रंग संवाद

जनवरी-मार्च 2012

वनमाली सृजन पीठ (भोपाल) का
त्रैमासिक संवाद पत्र

प्रधान संपादक

संतोष चौबे

संपादक

विनय उपाध्याय
vinay.srujan@gmail.com

संपादक मंडल

राजेश जोशी, राम प्रकाश, मुकेश वर्मा,
महेन्द्र गगन, बलराम गुमास्ता, राकेश सेठी

शब्दांकन : मुकेश सेन

संपादकीय संपर्क :
वनमाली स्मृति सृजन पीठ,
22, E-7, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462016
फोन : 0755-2423806, मोबाइल : 9826392428
ई-मेल : vanmalisrijanpeeth@gmail.com

●●●

ज़रूरी नहीं कि पत्रिका में संग्रहित आलेखों-चित्रों में व्यक्त रचनाकारों के विचारों से 'रंग संवाद' सहमत हो। किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र भोपाल रहेगा।

वनमाली सृजन पीठ, भोपाल द्वारा प्रकाशित। मुद्रक - पहले पहल प्रिंटरी, **25**-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, भोपाल

➲ अनुक्रम

रंगमंच का समाज शास्त्र - देवेन्द्रराज अंकुर / 5
रंगमंच पर स्त्रियाँ - राजेन्द्र उपाध्याय / 8
छवि के छोर - कमल कुमार / 11
हर कला को होती है आलोचना की दरकार -
रंगकर्मी पापिया दासगुप्ता से विनय उपाध्याय और एकता गोस्वामी का संवाद / 14
कविता के गाँधी - उदय प्रकाश / 19
काश! कानों में पड़े 'मेरुखण्डीय' तान - प्रभु जोशी / 21
उस्ताद का गायन एक असमाप्त सभा - सुशोभित सक्तावत / 22
महान स्वप्न द्रष्टा - आभा भारती / 23
संपूर्ण रंगकर्मी थे सत्यदेव दुबे - रवींद्र त्रिपाठी / 26
कैमरे से दिल्लगी की अनूठी दास्तान - नवल जायसवाल / 27
कोणार्क : अधूरे मंदिर की दास्तान - हेमंत देवलेकर / 29
विसर्जन का सृजन - आलोक चटर्जी / 31
रंग कविताएं - राजेंद्र उपाध्याय और ज़हीर कुरैशी / 33
लोकनाट्य का अनगढ़ हीरा - अनिल पतंग / 35
बिलाती राई - रमेशदत्त दुबे / 37
संस्कृति की छाँव में बसा एक शहर - कृष्णा अग्निहोत्री / 38
अनबूझा है नाद का रहस्य - विनय उपाध्याय / 41
सृजन के आस-पास : देश भर की सांस्कृतिक-साहित्यिक हलचल / 43
पाठक संवाद / 63
शेष विशेष : आगरा बाज़ार - विनय उपाध्याय / 65

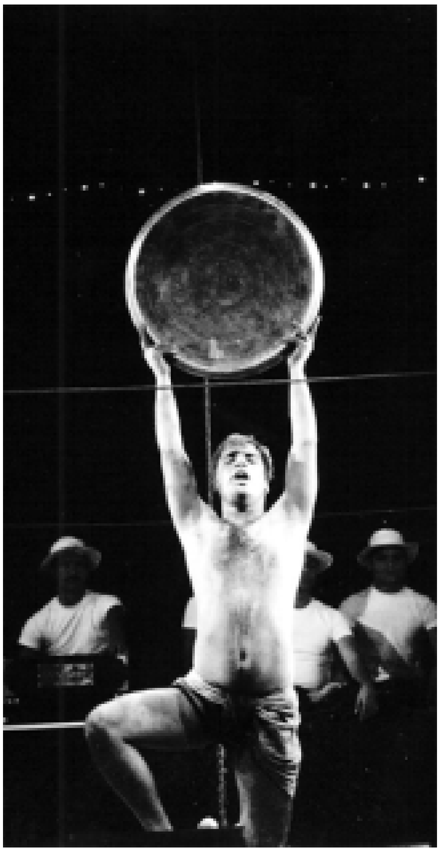

स्मृति शेष

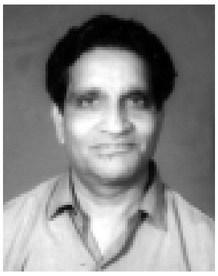

प्रो. अक्षय कुमार जैन

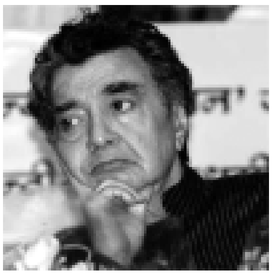

सत्यदेव दुबे

अलखनंदन

आकल्पन : विनय उपाध्याय ● **मुख्य आवरण चित्र** : प्रवीण दीक्षित ● **आवरण सज्जा** : वंदना श्रीवास्तव

भीतर के छायाचित्र : नवल जायसवाल, मनोहर काजल, विजय रोहतगी, प्रवीण दीक्षित, अमीन अख़्तर, अरुण जैन तथा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली के सौजन्य से

सहयोग : हेमंत देवलेकर, एकता गोस्वामी, मोहन सगोरिया, अमीन शेख

संपादकीय

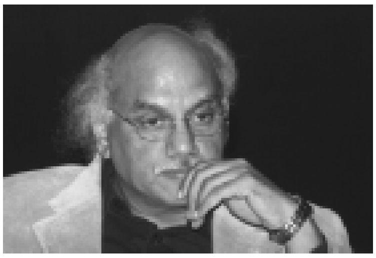

दूसरा उपन्यास

पहले की तरह
सरल नहीं होता
लिखना
दूसरा उपन्यास.

न तो दिल में रहती है
वैसी आग
और न दिमाग़ में
वह तापक्रम.

बस एक सघन उदासी
छाई रहती है चारों ओर
घिरते बादलों सी.

तब एक दिन
कलम उठाते हैं आप
और लिखते हैं
यूं ही सी कोई बात.

बात जैसे किसी
कोहरे या धुंधलके में छुपी
कौंधती कभी-कभी
बिजली सी
और कौंधते उसके साथ
कई चेहरे, चित्र, कहानियाँ
किस्से अस्पष्ट.

और जैसे जैसे
खुलती बात
आप देखते
कि पात्र सब पहचाने जा चुके
और कितना भी करें प्रयास
उनमें से झांकता
वही पुरानापन.

ढूंढ़े नहीं मिलता सूत्रधार
जो बिना उलझे
कह सके कहानी.

फिर कहानी का भी
कहां भरोसा
क्योंकि वह कभी निबंध
कभी संस्मरण
कभी कविता
में बदल जाती
और कोई तीन सौ पृष्ठों के बाद
याद दिलाती
कि वह भटक गई है रास्ते से
कि उसे एक बार फिर
शुरू से खोजना होगा.

सामने आता
अपने प्रिय लेखक का चेहरा
जिसे संबोधित करते
लिखा होगा शायद आपने
अब तक का उपन्यास
और जो आपकी पांच साल की मेहनत का
न करते हुये कोई लिहाज
उठायेगा
उसकी पठनीयता और वैचारिकता के बारे में प्रश्न.

याद आयेंगे
आंखों के इशारे
चेहरों के इंगित
योजना बद्ध हमले
और आलोचकों के प्रहार
काफी होंगे जो
विचलित करने के लिये आपको.

और जब गुज़र जायेंगे
किसी भूल भुलैया में भटकते
काल से लंबे कई माहो-साल
और जब हो जायेंगे
दिन का चैन और रात की नींद
आपको मुहाल
तो शायद आप तय करें
कि छोड़ देते हैं आप
इस दूसरे उपन्यास को
अपने हज़ार पन्नों के साथ
वहीं जहां वह पहुंच चुका है.

तभी एक रात अचानक
चमकेगा कथानक दुबारा
बिजली की तरह
और वे हज़ार पृष्ठ
जिनमें बिखरे पड़े थे
कहानियां, निबंध, संस्मरण और विमर्श
एक दूसरे से जुड़ने का
करते हुये इंतज़ार
खुद अपने आप को
सहेज पायेंगे.

आप ढूंढ़ेंगे
और आश्चर्य से पायेंगे
कि जाने कहाँ गायब हैं
उनमें से कोई सात सौ पृष्ठ
और फिर भी
अपनी परिपूर्ण आभा के साथ
खड़ा है आपके सामने
तीन सौ पृष्ठों का
एक भरा पूरा उपन्यास.

पढ़ेंगे आप उसे बार-बार
और सिर्फ आप ही
पहचान पायेंगे
कि क्या क्या रह गया
उसमें होने से शामिल
सिर्फ आप ही
देख पायेंगे उसका
आधा-अधूरापन.

लेकिन फिर भी
मन होगा
हवा की तरह हल्का
जाने कहाँ बिला जायेगी चिंता
प्रशंसकों की प्रशंसा
और आलोचकों की निंदा
पहचान लिया होगा आपने
खुद को अपने उपन्यास में
और इस तरह
मुक्त कर लिया होगा
खुद अपने आपको.

फिर कभी छायेगी
सघन उदासी
फिर कभी घिरेंगे बादल
और चमकेगी कथा
फिर कभी लिखा जायेगा
तीसरा उपन्यास
दूसरे के अधूरेपन को
पूरा करने के लिये.

❁❁❁

-संतोष चौबे

रंगमंच का समाजशास्त्र

देवेन्द्रराज अंकुर

देश में पिछले दिनों घटित सांप्रदायिक दंगों, तनावों और हिंसा के परिप्रेक्ष्य में यह सवाल बार-बार उठ रहा है कि ऐसी स्थिति में क्या रंगमंच की कोई सार्थकता बची है और रंगकर्मी की अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता अथवा सरोकार क्या होने चाहिए? क्या वह सिर्फ अपने माध्यम से ही जुड़ा रहे या कि उसे भी एक जागरूक नागरिक की तरह कार्यक्षेत्र में कूद कर अपनी सही भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि रंगमंच ही अकेला ऐसा माध्यम है जो अपने उद्‌भव से लेकर आज तक सबसे ज्यादा समाज के निकट है। समझ में नहीं आता हम उससे किस अतिरिक्त सामाजिक प्रतिबद्धता की मांग कर रहे हैं!

विभिन्न कला माध्यम अपनी सामग्री समाज से लेते हैं और उसे एक नया रूप देकर वापस लौटा देते हैं। लौटाने की प्रक्रिया अलग-अलग होती है। कहीं वह पाठक के रूप में, कहीं श्रोता के रूप में और कहीं दर्शक के रूप में समाज को लौटाई जाती है। इस निकटता के कारण रचना और समाज के रिश्ते भी अलग-अलग स्तर पर स्थापित होते चलते हैं। उदाहरण के लिए साहित्य में रचनाकार और पाठक का रिश्ता अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ता, टूटता और बनता है। ललित कलाओं में भी दर्शक और कलाकार के बीच लगभग यही स्थिति कायम रहती है। जहां श्रोता और दर्शक के रूप में कला और समाज की आपस में जुड़ने की बात है, उसके अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों रूप एक साथ दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए- गीत, संगीत को रचनाकार की जीवंत उपस्थिति के साथ भी सुना जा सकता है और यदि रचनाकार सामने उपस्थित नहीं है तो भी रचना का आस्वाद उतनी ही गहराई से महसूस किया जा सकता है। यही बात रेडियो जैसे ध्वनि माध्यम पर भी लागू होती है। अंततः दर्शक की दृष्टि से देखें तो वहां भी ये दोनों विकल्प मौजूद हैं।

फिल्म और दूरदर्शन का रिश्ता अप्रत्यक्ष है यानी दर्शक जीवंत है और उसे रचना का अवलोकन एक निर्जीव छोटे या बड़े पर्दे पर चलती-फिरती छवियों के रूप में करना पड़ता है। यहां तक कि नृत्य जैसी विधा को भी पर्दे पर देखते हुए उसकी बारीकियों को समझा और सराहा जा सकता है। दूसरी तरफ रंगमंच और समाज की एक-दूसरे से लेने और लौटाने की प्रक्रिया बिल्कुल अलग है और इसीलिए एक स्वतंत्र अध्ययन की मांग करती है। दरअसल यहां अभिनेता ही साधन है और वही साध्य है जिसे अंततः समाज पाना चाहता है लेकिन रंगमंच और समाज के रिश्ते की निजता और विशिष्टता यहीं समाप्त नहीं हो जाती। जिस क्षण से रचनाकार अपनी कृति की रचना के लिए तैयार होता है तभी से समाज का यह जुड़ाव उसके साथ कई रूपों में घटित होने लगता है। सबसे पहले एक नाटककार और उसकी रचना के बीच और आखिर में दर्शक, समाज और प्रस्तुति के बीच। जहां तक नाटककार और उसकी रचना का ताल्लुक है, वहां संबंध सभी कलाओं में लगभग एक जैसा है लेकिन अगले दो चरणों में अलग होने लगता है।

एक प्रस्तुति की तैयारी में बहुत से अभिनेता, निर्देशक और दूसरे नेपथ्य कर्मियों का एक छोटा-बड़ा समूह आकर जुड़ता है। सभी वैयक्तिक स्तर पर समाज के अलग-अलग वर्गों, व्यवसायों, धर्मों, संप्रदायों का प्रतिनिधित्व करते हुए भी सामूहिक रूप से एक ही लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध होते हैं कि मिल-जुलकर प्रस्तुति को

नाटक चाहे किसी भी युग में लिखा गया हो और किसी भी समय विशेष की कथा का बयान करता हो वह घटित हमेशा वर्तमान में ही होता है। दर्शक उस काल और समय के ही तात्कालिक और समकालीन समाज से जुड़े होते हैं जिस समय विशेष में वह नाटक उनके समक्ष मंचित हो रहा होता है।

साकार किया जाए। रंगमंच के समाजशास्त्र की पहली शर्त यही है कि उसमें सम्मिलित हर व्यक्ति को अपने निजी और व्यक्तिगत से अलग होना पड़ता है और फिर उसे सामूहिक और सामाजिक बनकर दर्शकों के सामने प्रस्तुत होना पड़ता है। यही बात दर्शकों पर भी लागू की जा सकती है जब वे नाटक देखने आते हैं। प्रेक्षागृह में बैठा हर दर्शक एक वैयक्तिक इकाई के रूप में होता है लेकिन जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता है दर्शकों की प्रतिक्रियाएं किसी क्षण विशेष में एक जैसी होने लगती हैं। इस अवस्था को काव्यशास्त्र में साधारणीकरण की अवस्था भी कहा गया है।

रंगमंच को लेकर प्रायः कहा जाता है कि उसमें विचार की भूमिका गौण होती जा रही है, कथा और उससे जुड़े दूसरे मोहक और आकर्षक तत्व जैसे गीत, संगीत और नृत्य उस पर ज्यादा हावी होते जा रहे हैं। ऐसा मत व्यक्त करने वाले यह भूल जाते हैं कि किसी भी कला का पहला उद्देश्य लोकानुरंजन करना है और फिर उसी के भीतर से गुजरते हुए विचार तक पहुंचना होता है। नाटक और रंगमंच में विचार के लिए अलग से प्रावधान नहीं होना चाहिए। अगर ऐसा होता है तो यह मान लेना चाहिए कि वह एक कमजोर नाटक है। उसकी रचना बेशक संवाद शैली में हुई हो लेकिन अपने मंचन में वह किसी गहरे रंगमंचीय अनुभव को संप्रेषित करने में कामयाब होगा- ऐसा हरगिज नहीं कहा जा सकता है। यही बात रंगमंच को लेकर उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता के विषय में भी कही जा सकती है।

देश में पिछले दिनों घटित सांप्रदायिक दंगों, तनावों और हिंसा के परिप्रेक्ष्य में यह सवाल बार-बार उठ रहा है कि ऐसी स्थिति में क्या रंगमंच की कोई सार्थकता बची है और रंगकर्मी की अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता अथवा सरोकार क्या होने चाहिए? क्या वह सिर्फ अपने माध्यम से ही जुड़ा रहे या कि उसे भी एक जागरूक नागरिक की तरह कार्यक्षेत्र में कूद कर अपनी सही भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि रंगमंच ही अकेला ऐसा माध्यम है जो अपने उद्‌भव से लेकर आज तक सबसे ज्यादा समाज के निकट है। समझ में नहीं आता हम उससे किस अतिरिक्त सामाजिक प्रतिबद्धता की मांग कर रहे हैं! क्या अपनी एक नाट्‌य प्रस्तुति को दर्शकों के बीच लेकर जाना अपने आप में सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रमाण नहीं है? यदि तात्कालिक समस्याओं की बात भी की जाए तो इधर 'कोर्टमार्शल' 'जिस लाहौर नहीं देख्या...' जैसे नाटकों को रंगमंच पर मिली सफलता क्या सूचित करती है?

दूसरी तरफ शाश्वत और सार्वकालिक विषयों पर लिखे गए नाटकों का भी दर्शकों से वैसा ही अटूट रिश्ता रहा है मसलन 'राजा इडिपस', 'अंधेर नगरी चौपट राजा', 'ध्रुवस्वामिनी' इत्यादि। नाटक चाहे किसी भी युग में लिखा गया हो और किसी भी समय विशेष की कथा का बयान करता हो वह घटित हमेशा वर्तमान में ही होता है। दर्शक उस काल और समय के ही तात्कालिक और समकालीन समाज से जुड़े होते हैं जिस समय विशेष में वह नाटक उनके समक्ष मंचित हो रहा होता है। इसलिए स्वाभाविक है कि वे नाटक की कहानी और उसमें निहित विचार को एकदम अपने समय से जोड़कर देखने लगते हैं। इस तरह जो नाटक जितना ज्यादा समकालीन होगा वह उतना ही शाश्वत और सार्वजनिक होगा। नाट्‌य साहित्य में ऐसे बहुत से नाटकों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिन्होंने अपने मंचन के अवसर पर हर बार अपनी सामाजिक प्रासंगिकता स्वयं प्रमाणित की। किस नाटककार का कोई भी नाटक समाज से अलग अपने किसी काल्पनिक संसार में स्थित है/ यह स्वयंसिद्ध है कि रंगकर्मी अपने माध्यम में रहकर भी सबसे ज्यादा समाज की समस्याओं पर उंगली रख सकता है। उनके समाधान दे सकता है और जटिल से जटिल परिस्थितियों में भी कोई न कोई विकल्प या रास्ता सुझा सकता है। नुक्कड़ नाटक जैसी विधा ने तो बार बार यह प्रमाणित किया ही है। नाटक की दूसरी विधाएं भी पीछे नहीं रही हैं। शायद समस्या तब पैदा होती है जब हम तात्कालिक स्थितियों की पृष्ठभूमि में रंगमंच को लेकर इस तरह की अपेक्षाएं करने लगते हैं। क्या रंगमंच की सामाजिक प्रतिबद्धता तभी स्थापित होगी जब उसमें भूख, गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी जैसी समस्याओं को उठाया जाए/ इसमें कोई संदेह नहीं कि ये समस्याएं अपनी जगह उतनी ही महत्वपूर्ण हैं लेकिन संयुक्त परिवारों का टूटना, आदमी और औरत के संबंधों में तनाव, औरतों की सामाजिक स्थिति क्या ये समस्याएं उस सामाजिक प्रतिबद्धता के दायरे में नहीं आतीं जिसकी चर्चा हमारे यहां गाहे-बगाहे होती रहती हैं। आज देश में जो हालात हैं उन्हें देखते हुए रंगमंच की क्या कोई भूमिका रह गई है? यदि हां, तो वह क्या होनी चाहिए अथवा क्या हो सकती है? कहा जा सकता है कि रंगकर्मी अपनी अलग दुनिया में काम कर रहे हैं, उनका समाज और उसकी समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है। अब समय आ गया है कि वे अपने इस बने-बनाए काल्पनिक संसार से बाहर आएं और समाज के सभी समुदायों, संप्रदायों और वर्गों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर एक सक्रिय कार्यकर्ता की भूमिका में उतरें।

जो लोग रंगकर्मी से इस तरह की अपेक्षाएं कर रहे हैं लगता है कि रंगकर्मी से ज्यादा वे स्वयं अपनी ही अलग दुनिया में लीन हैं, उनका रंगमंच के व्यवहारिक पक्ष से कोई लेना-देना नहीं है। उनसे पूछा जाना चाहिए कि ये सारी अपेक्षाएं मात्र रंगकर्मी से क्यों की जा रही हैं जबकि रंगकर्मी का तो पहले से ही समाज से सबसे ज्यादा गहरा रिश्ता है। उनसे यह सवाल भी पूछा जाना चाहिए कि उन्होंने स्वयं रंगकर्म करने वालों को समाज में क्या स्थान दिया है। क्या यह सच नहीं है कि आज भी रंगकर्म करने वालों को हेय दृष्टि से देखा जाता

है और उसे समाज में वह स्थान तो हरगिज प्राप्त नहीं है जो एक वैज्ञानिक, डाक्टर, इंजीनियर और इसी तरह की दूसरी विधाओं से जुड़े लोगों को मिलता है, यहां तक कि गायक, नर्तक, संगीतकार, चित्रकार, मूर्तिकार, शिल्पकार, वास्तुकार और साहित्यकार को भी बहुत ऊंचे धरातल पर प्रतिष्ठित किया जाता है और नाटक करने वालों की जगह इस क्रम में सबसे नीचे अथवा लगभग हाशिए पर है।

ऐसा भी नहीं है कि रंगकर्म के बारे में यह धारणा इधर ही पैदा हुई है, सच्चाई तो यह है कि जबसे रंगमंच का जन्म हुआ तब से रंगकर्मियों को समाज में शूद्रों के समकक्ष रखकर ही देखा जाता रहा है। 'नाट्यशास्त्र' के लिखे जाने के पीछे भी भरत ने इसी सत्य को सामने लाने की कोशिश की है कि बाकी चारों वेदों का पाठ और अध्ययन केवल ब्राह्मण कर सकते थे, इसलिए नाट्यशास्त्र के रूप में पांचवे वेद की रचना की गई जिसे शूद्र लोग भी पढ़ सकें। कहने को बेशक यह संदर्भ मात्र एक कहानी और मिथक हो सकता है। लेकिन क्या इससे समाज में व्याप्त शुरू से ही रंगकर्म और रंगकर्मी के बारे में बने हुए पूर्वाग्रह का संकेत नहीं मिलता? दूसरी तरफ ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस धारणा के प्रमाण उपलब्ध हैं, जब हम देखते हैं कि चाणक्य जैसा विचारक और राजनीतिज्ञ चौथी शताब्दी से पूर्व कलाकारों के लिए आवास की व्यवस्था शहर की सीमा से बाहर होनी चाहिए, अगर ये लोग नगरवासियों के साथ रहेंगे तो समाज को नैतिक रूप से भ्रष्ट कर डालेंगे।

आखिर ऐसा क्यों हुआ कि जो कला समाज को उन्नत बनाने में सबसे ज्यादा सहयोग करती है उसी के प्रयोक्ताओं को इतनी हेय दृष्टि से देखा जाता है। यदि इसके कारणों की गहराई से जांच-पड़ताल की जाए तो कुछ ठोस सूत्र पकड़े जा सकते हैं। सबसे पहले तो यही धारणा बनी रही कि रंगमंच अपने-आप में एक शुद्ध और स्वतंत्र कला न होकर विभिन्न कलाओं का संगम है और इसीलिए उसे हमेशा से मिश्रित या संकीर्ण कला का दर्जा दिया गया है। दूसरे, उसके प्रयोक्ता हमेशा से समाज के उस वर्ग से आते हैं जो आर्थिक रूप से कभी भी सम्पन्न नहीं था। यह स्थिति सिर्फ हमारे ही देश में रही हो ऐसा नहीं है। प्राचीन और मध्यकाल में इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन और जर्मनी जैसे देशों में जो लोग रंगमंच पर काम कर रहे थे, वे गुलाम होते थे या समाज के निचले तबकों से जुड़े व्यवसायों से संबद्ध होते थे, जैसे मोची लोहार, सोनार इत्यादि। देखा जाए तो एक और कारण भी प्रस्तुत किया जा सकता है, वह यह कि रंगमंच का मूल उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना है। इसलिए यह काम शुरू से ही ऐसे लोगों को सौंप दिया गया जो अपनी कला और कारीगरी से समाज को प्रसन्न कर सकें यानी समाज के उस वर्ग ने अपने-आप को पहले से ही उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित कर लिया जिसे दर्शक वर्ग कहा जाता है और उन्हें प्रसन्न करने वाले उनसे नीचे ही रहे। मदारी और सर्कस के कलाकारों के प्रति समाज के खैए के पीछे क्या यही धारणा काम नहीं करती रही है।

समाज में रंगमंच को लेकर ऐसी धारणाओं के पीछे एक बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण भी है। जैसा कि शुरू में ही कहा गया रंगमंच एक सामूहिक माध्यम है। इसमें स्त्री-पुरुष की खुली भागीदारी होती है। कहीं न कहीं रंगकर्म की प्रक्रिया से गुजरते हुए, विभिन्न चरित्रों को जीते हुए, अभिनीत करते हुए और चौबीस घंटे एक साथ रहते हुए उसमें शामिल स्त्री-पुरुष कलाकार समाज द्वारा स्वीकृत उन मर्यादाओं और सीमाओं को अनजाने या अनायास ही बात समाज को स्वीकार नहीं होती। इसीलिए कहा भी गया है कि सभी कला माध्यमों में रंगमंच सबसे ज्यादा कठिन और जटिल माध्यम है। दरअसल रंगमंच और समाज के आपसी रिश्ते उतने सीधे और सपाट नहीं होते जितने बाहर से दिखाई पड़ते हैं। समाज में रंगकर्म करने वालों की स्थिति तलवार की धार पर चलने के समान है यानी अपने अभिनय और मंचन के माध्यम से कलाकार समाज के लिए जिन ऊंचे मानकों और आदर्शों की प्रतिष्ठा करते हैं यदि वे अपने वास्तविक जीवन में स्वयं ही उनसे डिग जाएं तो उन्हें कोई क्षमा नहीं करेगा। रंगमंच और समाज के रिश्तों की आदर्श स्थिति यही है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक बनें।

रंगमंच के समाजशास्त्रीय अध्ययन का एक पहलू यह भी है कि समाज में जिस तरह की राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियां मौजूद होती हैं, ऐसे ही कथ्यों पर बहुत से नाटक एक साथ लिखे जाते हैं और उनका मंचन भी होता है। इतिहास में हम उन परिस्थितियों के संदर्भ में उपलब्ध नाट्य रचना को आधार बनाकर अपने निष्कर्ष की पुष्टि कर सकते हैं। जब भी समाज में अमन चैन की स्थितियां रहीं उन्हीं दिनों में प्रायः शाश्वत कथ्यों वाले नाटक सामने आए। जब भी समाज में अव्यवस्था का माहौल रहा तो नाटकों के कथ्य भी उसी के अनुरूप दिखाई पड़ते हैं। मात्र एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा- आजादी के केवल पंद्रह वर्षों बाद 1962 में चीनी आक्रमण के बाद जब सब तरह के आदर्शों, सपनों और आकांक्षाओं से हमारा मोहभंग हुआ तो उसके परिणाम समाज में भी दिखाई पड़े जैसे संयुक्त परिवार के टूटने की शुरुआत, निजी और स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश, उनके बीच बढ़ते हुए तनाव। क्या उस दौर में हिन्दी में लिखे गए बहुत से नाटक इन्हीं कथ्यों के इर्द-गिर्द नहीं घूमते? यह सहज और स्वाभाविक है कि नाटक और रंगमंच, जीवंत दर्शक, इनके आपसी तालमेल, लेन-देन और टकराव के जितने भी आयाम हो सकते हैं उन सबके भीतर से गुजर कर ही रंगमंच के समाजशास्त्रीय अध्ययन की एक ठोस भूमिका तैयार की जा सकती है।

जब भी समाज में अमन चैन की स्थितियां रहीं उन्हीं दिनों में प्रायः शाश्वत कथ्यों वाले नाटक सामने आए। जब भी समाज में अव्यवस्था का माहौल रहा तो नाटकों के कथ्य भी उसी के अनुरूप दिखाई पड़ते हैं। इतिहास में हम उन परिस्थितियों के संदर्भ में उपलब्ध नाट्य रचना को आधार बनाकर अपने निष्कर्ष की पुष्टि कर सकते हैं।

रंगमंच पर स्त्रियाँ

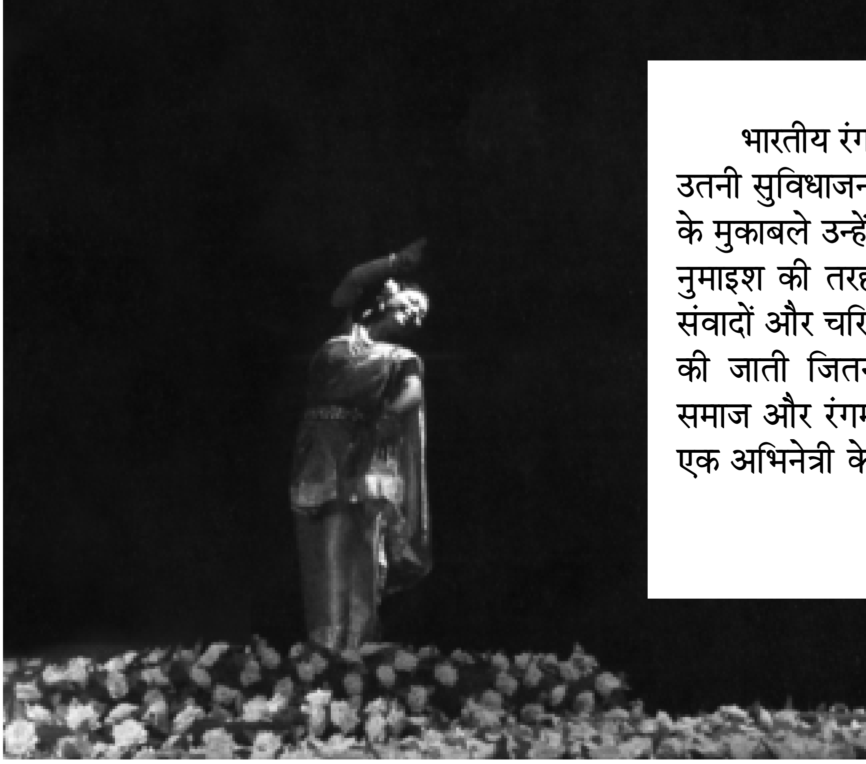

भारतीय रंगमंच पर स्त्रियों के लिए स्थितियाँ उतनी सुविधाजनक नहीं हैं। अक्सर अभिनेताओं के मुकाबले उन्हें कम आँका जाता है। अक्सर वे नुमाइश की तरह इस्तेमाल की जाती हैं। उनके संवादों और चरित्र-चित्रण पर उतनी मेहनत नहीं की जाती जितनी कि पुरुष अभिनेताओं पर। समाज और रंगमंच पर ऐसे तत्व मौजूद हैं जो एक अभिनेत्री के काम को मुश्किल बनाते हैं।

राजेंद्र उपाध्याय

आज रंगमंच पर जितनी महिलाएं सक्रिय हैं उतनी पहले कभी नहीं रहीं। आधुनिक भारतीय नाटकों में स्त्री-विमर्श जितनी प्रखरता और मुखरता के साथ व्यक्त हुआ है उतना साहित्य की किसी और विधा में नहीं। कहानी, उपन्यास में भी स्त्री-विमर्श उतना मुखर नहीं है जितना विजय तेंदुलकर, मोहन राकेश और सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में। जयशंकर प्रसाद का नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' इस नज़रिए से हिन्दी में स्त्री-विमर्श का पहला नाटक है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों का भी इस दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है। धर्मवीर भारती का काव्य नाटक 'अंधायुग' भी गांधारी के माध्यम से स्त्री-विमर्श के कई प्रश्न उठाता है। हर ओर जब मार काट मची है, सभ्यताएँ दाँव पर लगी हैं, तब एक स्त्री नैतिकता के मूलभूत प्रश्न प्रभु के सामने उठाती है। धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' में बताया है कि महाभारत में स्त्री पर प्रभुओं ने कितना अन्याय किया है। द्रोपदी, गांधारी सब पर अन्याय हुआ है। दुनिया में कोई ऐसा देशकाल नहीं है जो स्त्री का अपराधी न हो। दुनिया की प्रत्येक सभ्यता में स्त्री की अवस्था त्रासद ही रही है। हम जैसे-जैसे सभ्य होते जाते हैं- स्त्री पर अत्याचार के हमारे तौर तरीके भी बढ़ते जाते हैं। स्त्री के प्रति बलात्कार ही आतंकवाद है- प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी' को इसी दृष्टि से देखना चाहिए। आज स्त्री-विमर्श हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण हो उठा है। नाट्य लेखन में भी इसकी अनुगूंज सुनी जा सकती है। हिन्दी में स्त्री नाटकों की कमी ज़रूर है पर जो भी है उन्होंने अपनी कृतियों में स्त्री-विमर्श को भलीभाँति उठाया है। कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी' में, मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' में, ऊषा गांगुली ने 'गुड़ियाघर' में और महाश्वेता देवी ने 'रुदाली' में स्त्री विमर्श को गहराई से आवाज़ दी है। भारत में महिला नाटककारों की संख्या थोड़ी रही है, लेकिन उनके योगदान का समुचित अध्ययन ज़रूरी है।

नाटक की दुनिया में एक औरत होने की क्या पीड़ा है और क्या सुख-दुख हैं? महिला रंगकर्मी को किस नज़र से देखा जाता है? एक स्त्री का रंगमंच के प्रति रुझान उसके घर-परिवार में किस तरह से देखा जाता है? परदे पर आ रही स्त्री के परदे के पीछे बहुत सी ग़ैर-ज़रूरी तकलीफदेह बातें हैं। किसी नाटक में अभिनेत्री का बुरी औरत का चरित्र निभाना क्या समाज में भी उसकी वैसी ही तस्वीर नहीं पेश करता है? नाटक में व्यक्ति-विशेष के चरित्र को निभाने का असर क्या निजी ज़िंदगी पर भी पड़ता है? क्या एक अभिनेत्री की कोई सामाजिक ज़िम्मेदारी या जवाबदेही भी बनती है या वह समाज से परे है? किसी पुरुष अभिनेता के बनिस्बत एक अभिनेत्री हर बार यह सोचेगी कि अगर मैं इस तरह की भूमिका करूंगी तो दर्शक मेरे बारे में क्या सोचेंगे? जबकि अभिनेता समाज की परवाह नहीं करके भी अभिनय कर सकता है। भारतीय रंगमंच में स्त्रियों के लिए स्थितियाँ उतनी सुविधाजनक नहीं हैं। अक्सर अभिनेताओं के मुकाबले उन्हें कम आँका जाता है। अक्सर वे नुमाइश की तरह इस्तेमाल की जाती हैं। उनके

संवादों और चरित्र-चित्रण पर उतनी मेहनत नहीं की जाती जितनी कि पुरुष अभिनेताओं पर। समाज और रंगमंच पर ऐसे तत्व मौजूद हैं जो एक अभिनेत्री के काम को मुश्किल बनाते हैं।

हमेशा घूरती निगाहें एक अभिनेत्री को यौन प्रतीक के रूप में ही देखती हैं। पुत्री के रूप में अभिनय कर रही अभिनेत्री अगर पिता का अभिनय कर रहे अभिनेता से गले मिलती है तो लोग गलत अंदाज़ लगाते हैं। अभिनेत्री के सर्वोत्तम चरित्र निभाने में कई मान्यताएँ आड़े आती हैं। लगता है हर समय अभिनेत्री किसी पिंजरे में कैद है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में महिला रंगकर्मियों ने अपने योगदान से भारतीय रंगमंच को सार्थक और सुंदर छवि दी है। कोलकाता में ऊषा गांगुली, प्रतिभा अग्रवाल और शांओली मित्र ऐसे ही नाम हैं जो सहज ही याद आ सकते हैं। उषा गांगुली ने विदेशी नाटकों को तो प्रस्तुत किया ही है, 'काशीनामा' हिन्दी उपन्यास पर आधारित नाटक के माध्यम से भी देश-विदेश में अच्छी साख बनाई है। ये रंगकर्मी रंगमंच की तकनीकें और जटिलताएँ जानती हैं।

मशहूर रंगकर्मी इब्राहिम अल्काजी की पुत्री अमाल अल्लाना ने 'मदर करेज' नाम से ब्रेख्त के नाटक को भारतीय परिवेश में ढाला और मनोहर सिंह को एक नई छवि, मां की- स्त्री की भूमिका में प्रस्तुत किया। अमाल अल्लाना के 'तुगलक' आदि नाटक इस दृष्टि से याद किए जा सकते हैं। आज एक स्त्री रंगमंच की हर चुनौती का सामना करने में सक्षम है। उत्तरा बावकर, सुरेखा सीकरी, रोहिणी हटंगडी, हिमानी शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, रत्ना पाठक शाह, किरण खेर, शबाना आज़मी, लिटिल दुबे, सुलभा देशपांडे, स्मिता पाटिल और जया बच्चन के काम पर भी नए सिरे से विचार ज़रूरी है। एक समर्थ अभिनेत्री, अभिनेता जितनी ही प्रभावशाली प्रस्तुति दे सकती है। वह रंगमंच की 'धुरी' है।

भारतीय रंगमंच के सुपरिचित रंगकर्मी शंभु मित्र का योगदान जगज़ाहिर है, उनकी सुपुत्री शांओली मित्र का योगदान भी कमतर नहीं है। उसका मूल्यांकन भी करना आवश्यक है। नाट्य रचना, अभिनय और निर्देशन में उनके योगदान को अखिल भारतीय स्वीकृति मिली है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उन्होंने कई आयोजनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'महाभारत' पर 'नाथवती अनाथवत' और 'कथा अमृत समान' जैसे नाटकों ने उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैलाई है और उनके एकल 'नाथवती अनाथवत' नाटक को बांग्ला का प्रतिष्ठित आनंद पुरस्कार मिला है। उनकी कहानियों और अन्य रचनाओं ने ध्यान आकर्षित किया है।

बांग्ला में 'तर्पण' नाम से और हिन्दी में 'पुत्री का कथन' नाम से प्रकाशित पुस्तक में उन्होंने बताया है कि शंभु मित्र, माँ तृप्ति मित्र और 'बहुरूपी' संस्था ने किस तरह रंगमंच का नया इतिहास रचा। उनकी माँ तृप्ति मित्र के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। 'पुत्री का कथन' के विशेष अध्ययन से रंगमंच के कालखंड में स्त्रियों के योगदान पर ख़ास असर पड़ता है। सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से शंभु मित्र, तृप्ति मित्र और शांओली मित्र के योगदान का विशेष अध्ययन अपेक्षित है। ये तीनों निर्देशक-अभिनेता थे। 'न्यू वेब बंगला

हमेशा घूरती निगाहें एक अभिनेत्री को यौन प्रतीक के रूप में ही देखती हैं। पुत्री के रूप में अभिनय कर रही अभिनेत्री अगर पिता का अभिनय कर रहे अभिनेता से गले मिलती है तो लोग गलत अंदाज़ लगाते हैं। अभिनेत्री के सर्वोत्तम चरित्र निभाने में कई मान्यताएँ आड़े आती हैं। लगता है हर समय अभिनेत्री किसी पिंजरे में कैद है।

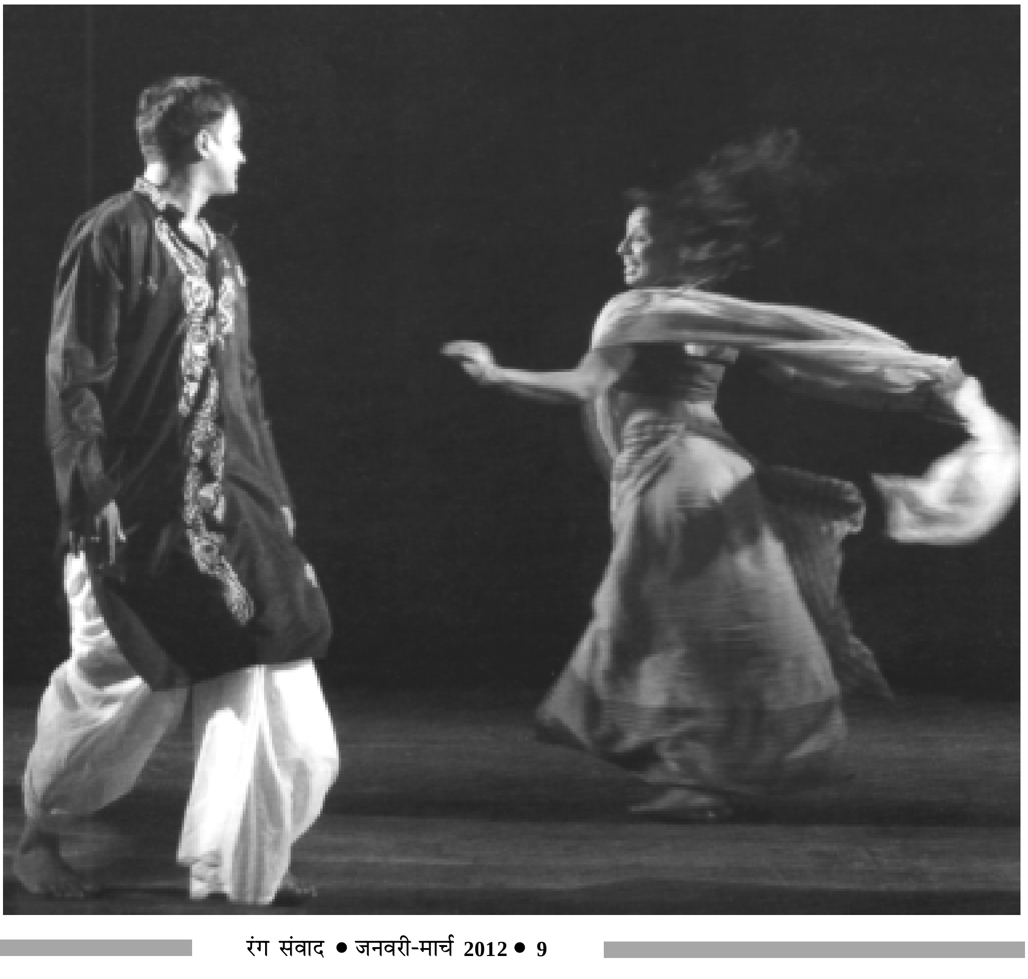

थियेटर’ में सामाजिक राजनीतिक संदर्भ का अध्ययन स्त्रियों की दृष्टि से करना ज़रूरी है। महाश्वेता देवी ने अपने ‘हज़ार चौरासी की माँ’ जैसे नाट्य-रूपांतरों से बांग्ला रंगमंच को नई आभा और गरिमा दी। नाट्य-लेखन और निर्देशन भले ही पुरुषों ने ज़्यादा किया हो, पर मंच पर उसे प्रस्तुत करके कोई अभिनेत्री उसमें एक नई ही अर्थछवि भर देती है। एक स्त्री का नाटक एक पुरुष के नाटक से कई मायनों में भिन्न होता है। ‘जस्मा ओड़न’ हो, ‘मदर करेज’ हो, ‘सेंटजुआ की भली औरत’ हो, ‘मित्रो मरजानी’ हो, ‘सूर्यास्त की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक’ हो, एक स्त्री अपनी हाड़-मज्जा से इन भूमिकाओं में अपने प्राण भरती है। वह एक ठंडी निर्जीव पटकथा को जीवंत ऊष्मा से भर देती है। यों तो नाटक नाटककार का ही होता है, पर जो नाट्यरूप हम मंच पर देखते हैं, वह निर्देशक और अभिनेताओं की सामर्थ्य पर जीवंत होता है। एक पुस्तक में बंद नाटक को दृश्यकाव्य में बदलने वाले निर्देशक और अभिनेता-अभिनेत्री ही होते हैं। नाटककार रवींद्रनाथ ठाकुर, शेक्सपीयर, कालिदास हों या बादल सरकार- निर्देशक, अभिनेता उसे दर्शकों तक सच्चे अर्थों में संप्रेषित करता है। वह उसका संधान करता है।

समर्थ अभिनेता, अभिनेत्री या निर्देशक उसमें तीसरी मात्रा या तीसरी दृष्टि भी जोड़ सकता हैं। एक समर्थ अभिनेत्री उसे कई अर्थछवियाँ प्रदान करती है। एक भारतीय स्त्री की निराशा और क्रोध को, दुख और त्याग को अभिव्यक्त करने में अभिनेत्रियाँ सक्षम हैं। रंगमंच के प्रति श्रद्धा और समर्पण से एक अभिनेत्री उसे एक मंदिर बना देती है। जबकि पुरुष अभिनेताओं के मुकाबले उसके योगदान को उसकी सामर्थ्य को कम करके आँका जाता है।

एक भारतीय स्त्री की निराशा और क्रोध को, दुख और त्याग को अभिव्यक्त करने में अभिनेत्रियाँ सक्षम हैं। रंगमंच के प्रति श्रद्धा और समर्पण से एक अभिनेत्री उसे एक मंदिर बना देती है।

रंगमंच में संगीत और नृत्य के निर्वाह में भी स्त्रियों ने अहम भूमिका निभाई है। एक स्त्री का आकर्षक नृत्य, नाटक में अजीब लोच पैदा करता है। अन्यथा नाटक बोझिल और नीरस हो सकता है। ‘पुतुल खेला’, ‘चार अध्याय’ और ‘कांचन रंग’ में तृप्ति मित्र और शांओली मित्र ने अभूतपूर्व रंग भरे हैं। शांओली मित्र ने ‘पंचम वैदिक’ का निर्देशन और मंचन किया है। दो सदियों की यात्रा पूरी कर चुके भारतीय रंगमंच ने अपने लोकनाट्य रूपों से भी प्रेरणा ली है। लोकनाट्यों में भी स्त्री अभिनेताओं की प्रमुख भूमिका रही है। हबीब तनवीर के नाटकों की लोकनाट्य में रची-बसी अभिनेत्रियों के बगैर कल्पना ही नहीं की जा सकती है। इन लगभग निरक्षर महिलाओं ने उनके ‘चरणदास चोर’, ‘आगरा बाज़ार’ वगैरह को देश-विदेश में अति ऊर्जा के साथ प्रस्तुत किया। यहाँ तक कि शेक्सपीयर के कालजयी और दार्शनिक आभा से मंडित नाटकों को भी इन लोक अभिनेत्रियों ने जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया। इन लोकनाट्य अभिनेत्रियों के योगदान का अध्ययन भी ज़रूरी है। विजय तेंदुलकर के ‘सखाराम बाइंडर’ या ‘घासीराम कोतवाल’ में स्त्री की छवि हमारे लोकमानस में गहरी बैठी हुई है। उसमें लोकपरंपरा को आत्मसात करने की अभूतपूर्व क्षमता है। ‘खामोश!अदालत जारी है’ की स्त्री अपने पारंपरिक रूप में होते हुए भी एक विद्रोहिणी स्त्री है। ‘कन्यादान’, ‘कमला’ और ‘अंजी’ में भी स्त्री की नई छवि की तलाश की गई है।

मोहन राकेश के ‘आधे अधूरे’, ‘आषाढ़ का एक दिन’ और जयवंत दलवी की ‘संध्या - छाया’ की स्त्रियाँ भिन्न होते हुए भी एक भारतीय स्त्री की जो छवियाँ प्रस्तुत करती हैं कई कोणों से उसका अध्ययन ज़रूरी है। समाज की ओर से बहिष्कृत कई अज्ञात और अल्पज्ञात अभिनेत्रियों ने भी भारतीय रंगमंच की श्रीवृद्धि की है। हंसा वाडेकर की आत्मकथा पर ‘भूमिका’ फिल्म में अभिनेत्रियों की दशा-दुर्दशा पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। स्मिता पाटिल ने इस चरित्र को जीवंत कर दिया था। रेखा जैन ने हिन्दी में ‘बाल-रंगमंच’ को सक्रिय करने में जो भूमिका निभाई है, उसका अलग से अध्ययन ज़रूरी है। कीर्ति जैन ने भी रंगमंच को अर्थवत्ता प्रदान की है। ज़ोहरा सहगल के लंबे योगदान को यहां भुलाया नहीं जा सकता। हेमा सिंह ने अजीत कौर के ‘ख़ानाबदोश’ को अर्थवत्ता प्रदान की। नीलम मानसिंह ने गिरीश कर्नाड के नाटकों को पंजाबी में ‘नागमंडल’ नाम से प्रस्तुत किया। कुछ महिलाओं ने रंगमंच का इस्तेमाल हथियार की तरह किया है लेकिन वे इसमें कितनी कारगर हुईं, इसका मूल्यांकन बाकी है।

नंदकिशोर आचार्य, भानु भारती, महेंद्र भल्ला और सुरेंद्र वर्मा ने अपने नाटकों में स्त्री-विमर्श को प्रमुखता से उठाया है। मंजुल भगत के ‘अनारो’ में भी एक स्त्री की कहानी है। भीष्म साहनी के ‘माधवी’ की स्त्री महाभारतकालीन होकर भी आधुनिक भावबोध से भरी है। ‘तमस’ के नाट्यरूप में भी स्त्री की अनेकानेक छवियाँ हैं। कृष्ण बलदेव वैद के ‘भूख आग है’ में भी एक आधुनिक समय में रह रही स्त्री की व्यथा-कथा है। देवेंद्रराज अंकुर ने ‘कहानी का रंगमंच’ के माध्यम से ‘वापसी’, ‘चीफ की दावत’ वगैरह के स्त्री छवि और स्त्री विमर्श को उभारा है। प्रेमचंद की ‘निर्मला’ से भी नाटककारों ने स्त्री विमर्श को समझने की कोशिश की है।

कृष्णा सोबती की ‘ऐ लड़की’ के नाट्यरूपांतर में भी जीवन और मृत्यु के मूलभूत प्रश्नों को पूरी क्षमता के साथ उभारा गया है। स्त्री समस्याओं को थिएटर के ज़रिए समझने की कोशिश की गई

लेकिन समाज पर उसके प्रभाव का सही ढंग से अध्ययन नहीं हो पाया है। 'गिरिजा कल्याण' में जयश्री ने ब्रेख़्त के एपिक थिएटर से प्रेरणा ली है। एपिक थिएटर का मूल अंग है कोरस और उसका प्रयोग निर्देशक ने बहुत ही अर्थपूर्ण ढंग से किया है। इतना ही नहीं जयश्री स्वयं कोरस दल की मुखिया होकर मंच पर उतरीं और बीच-बीच में कोरस से निकलकर गिरिजा के जीवन का हिस्सा भी बनीं। हालांकि नाटक का नाम 'गिरिजा कल्याण' है और केंद्रीय चरित्र भी एक नारी ही है। फिर भी कहा जा सकता है कि यह नाटक नारी केंद्रित या नारीवादी चरित्र हैं जो उसके पड़ोसी हैं, उसके आत्मीय हैं, उसके सुख-दुख के साथी हैं और वही लोग अपना स्थान परिवर्तन कर कोरस दल के सदस्य भी बन जाते हैं। नाटक के मूल चरित्र को मंगला रघु ने जीवंत किया है। उन्होंने चरित्र को अपने सूक्ष्म अभिनय से ऐसी जीवंतता दी है कि दर्शक गिरिजा के जीवन के भागीदार बन जाते हैं। सभी दर्शक अनायास ही गिरिजा के जीवन के सुख-दुख के भागीदार हो गए।

रामगोपाल बजाज के 'लैला मजनूं' में लैला की भूमिका को लक्ष्मी रावत ने जीवंत किया है। इसमें बबिता पांडे, रसिका आगाशे, हेमा बिष्ट, मुक्ता सिंह और मीता मिश्रा ने सुंदर अभिनय किया है। मुख्य भूमिका में लक्ष्मी रावत ने मर्मस्पर्शी अभिनय कर नाटक को अविस्मरणीय बना दिया।

लैला की मां के रूप में कविता वर्मा का अभिनय यादगार रहा है। रतन थियम ने अपने नाटक 'नाइन हिल्स वन वैली' के माध्यम से अशांत मणिपुर की वेदना को उठाया है। इसमें सात महिलाएँ विपदा नाशिनी देवी की पूजा इस उम्मीद में करती हैं कि वह समस्त विपदाओं का नाश कर मणिपुर में फिर से शांति स्थापित करेगी और वहाँ सभी तरह के विकास संभव हो सकेंगे। नाटक के एक दृश्य में कुछ महिलाएँ अपने बच्चों को पीठ पर लिए उनके भविष्य के मंगल अमंगल के बारे में सोच रोती-कराहती दिखाई देती हैं और उसी समय आसमान में चमकता दिखाई देता है समस्याओं से जर्जरित सूर्य। मणिपुर की ही एक अन्य समर्थ यशस्वी अभिनेत्री हैं- हेईश्नाम सावित्री, जो मणिपुर के निर्देशक हेईश्नाम कनाईलाल की पत्नी हैं। सुनियंत्रित है, आत्मिक अभिव्यक्ति द्वारा रवींद्रनाथ ठाकुर के 'डाकघर' की अमल का मुख्य चरित्र निभाया है। इसके जीवन की आशा आकांक्षा, स्वप्न और यातना को सफलतापूर्वक उभारा है।

छवि के छोर

कमल कुमार

स्वतंत्रता के बाद के नाटकों और रंगमंच पर ध्यान दें तो औरत की स्वतंत्र, स्वायत्त, व्यक्तिवादी छवि के पीछे के 'कड़वे सच' को देखा जा सकता है। वैसे देखा जाए तो बीसवीं शताब्दी का आरंभ ही नाट्य साहित्य के एक समग्र नाट्य आंदोलन से होता है। जयशंकर प्रसाद ने औरत की छवि दो ध्रुवों पर चित्रित की। एक वह, जो अप्रतिम सुंदरी, विनयशील, त्याग की मूर्ति, क्षमापूर्ण, दयापूर्ण और अनुगामिनी है और पुरुष का मन जीत लेती है। दूसरी वह, जो महत्वाकांक्षी, गर्व से भरी, कामुक और कामनाओं से प्रेरित है। इस औरत की नियति परास्त होना, दुख उठाना और मारे जाना या मर जाना है। प्रसाद की औरत का सच पहले ध्रुवांत की औरत है। लेकिन 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद ने एक जाग्रत औरत को चित्रित किया है। जो स्वतंत्र रूप से निर्णय लेती है। वह नपुंसक और भयातुर पति रामगुप्त की अपेक्षा साहसी और श्रेष्ठ चंद्रगुप्त का वरण करती है। ध्रुवस्वामिनी में अगली पीढ़ियों की आधुनिक औरत का रूप प्रतिबिंबित होता है। साथ ही, सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रहार है। स्वाधीनता आंदोलन में भागीदारी के कारण स्त्रियाँ सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर अधिक सशक्त भूमिकाओं में भी आईं। धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' में गांधारी भगवान कृष्ण को चेतावनी देती है। 'मादा कैक्टस' की सुजाता पति द्वारा छोड़ दिए जाने पर संघर्ष का मार्ग चुनती है और अपनी नई पहचान और प्रतिष्ठा पाती है। इसी समय में लिखा और मंचित हुआ 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास की प्रेमिका मल्लिका को भावमयी, निष्ठावान और त्यागमयी दिखाया है जो जीवन के कड़वे सच से परे अपनी बनाई एक भावात्मक दुनिया में चली जाती है जबकि कालिदास के एक के बाद एक धोखे

के बाद भी उस पर अपना अधिकार नहीं जताती। यही परंपरागत आदर्श औरत है जो त्यागमयी, समर्पित पर प्रसन्न है। इसके विपरीत मोहन राकेश 'लहरों के राजहंस' में बिलकुल अलग औरत चित्रित करते हैं।

'आधे अधूरे' में मध्यवर्ग की कामकाजी औरत के संघर्ष को दर्शाया गया है। एक तरफ अकेली कमाऊ औरत है, दूसरी तरफ घर में निठल्ला पति और आवारा बच्चे। ऐसी औरत घर और बाहर, समाज की हिंसा का शिकार होती है और उसी घर में रहने के नरक को भोगने पर भी विवश होती है। मोहन राकेश क्यों 'सावित्री' को घर की कैद से मुक्त नहीं करते? विजय तेंदुलकर के भी लगभग सभी नाटकों में स्त्री पात्र स्वतंत्र, स्वावलंबी और स्व-आग्रही हैं लेकिन वे पुरुष के हाथों सभी प्रकार की हिंसा सहने को विवश हो जाती है, क्यों? इसके बाद 1970 के आसपास समीकरण बदले। परिवार और समाज में भी परिवर्तन की प्रक्रिया में उदारता आई।

सुरेंद्र वर्मा और रमेश बक्षी के नाटकों में प्रेम, सेक्स में तब्दील हो गया। सुरेंद्र वर्मा का 'द्रोपदी' इस विषय को चमत्कारिक रूप से उठाता तो है, लेकिन अंतिम रूप से औरत फिर वस्तु हो जाती है। पुरुष के लिए, उसकी संतुष्टि के लिए 'उपभोक्ता वस्तु'। शंकर शेष के रक्तबीज' में भी यही हुआ। सुरेंद्र वर्मा के 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' में शीलवती को नाटककार ने अपनी अलग पहचान दी है। नपुंसक ओकाक की वह निष्ठावान और समर्पित पत्नी के तौर पर खुश है। लेकिन जब 'नियोग' से उसे संतान प्राप्ति के लिए दूसरे पुरुष के पास जाने को विवश किया जाता है तब वहाँ उसे आत्मबोध होता है कि वह अपनी और समाज की सारी श्रृंखलाओं को तोड़कर एक स्वतंत्रचेता स्त्री के रूप में कर्तव्य, नैतिकता, मर्यादा जैसी खोखली मान्यताओं की धज्जियाँ उड़ाती हैं। सुरेंद्र वर्मा के 'शकुंतला' में पौराणिक शकुंतला के मिथ को तोड़ आज की औरत के रूपक में ढाला गया है।

पुरुष नाटककारों की औरतें कहीं ज्यादा आक्रोशी, आक्रामक और अक्खड़ हैं जबकि स्त्री नाटककारों के स्त्री पात्र शांत, संयमी, विनम्र, सहानुभूतिपूर्ण और मानवीय हैं। अपने विरोध व्यक्त करने में भी उनमें एक संयम है।

रमेश बक्षी ने शायद सबसे पहले विवाह संस्था पर प्रश्न उठाया। 'देवयानी का कहना है' में शीलवती की तरह देवयानी कहती है, ''एक 'सेब' जीवनभर के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता।'' वह दूसरे पुरुष साधन से विवाह इसलिए करना चाहती है क्योंकि विवाह से बाहर सेक्स बहुत महंगा होता है। देवयानी और साधन साथ रहते हैं, पर दूसरों के सामने विवाहित होने का आडंबर करते हैं। वह एक नए रिश्ते में रहना चाहते हैं। पर पहले दिन से ही उनमें टकराहट होती है। देवयानी वेश्या की भूमिका में आ जाती है। तीसरे दिन 'शादी का स्वागत समारोह' विवाह की रस्म बन जाता है। देवयानी एक असुरक्षित भविष्य को स्वीकार करती है। ऐसी महत्वाकांक्षी और व्यक्तिवादी औरतों के लिए अपना स्वार्थ और अपना हित अहम है। विवाह के बंधन नहीं। सवाल यह भी है कि ऐसी औरतें हमारे समाज के कौन से वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं? मध्यम वर्ग शिक्षित, स्वावलंबी या उच्च वर्ग की संपन्न औरत ही ऐसी हिमाकत कर सकती है। दूसरी ओर, सच यह भी है कि विवाह-संस्था स्त्री की सुरक्षा और एक सामाजिक व्यवस्था के नियमन के लिए थी। लेकिन वही संस्था उसके लिए नरक और क़ैद बन जाती है। धार्मिक मान्यताएँ, परंपराएँ और रुढ़ियाँ औरत के विरोध में हैं। स्त्री स्वतंत्रता आंदोलनों ने भी परिवारों की शोषक व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं डाला। परिवार से बाहर आई औरत का पुरुषवर्ग ने दूसरे तरह से शोषण किया। सिर्फ पूरबी दुनिया में नहीं, पश्चिमी समाज में भी अकेली औरत का शोषण होता है। 'ऑन द पॉलिटिक्स ऑर इलुजन' में केशव रॉओ ने लिखा है कि पुरुष ही संस्थाओं के स्वामी हैं। वे अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहते हैं। औरत को पुरुष बनने के लिए उकसाते हैं।

इन सबके बाद भी आम औरत की स्थिति, सामाजिक सोच और आम परिवारों में औरत की स्थिति में क्या अंतर आया है? प्रभाकर श्रोत्रिय का 'इला' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रकृति के विरुद्ध इला का लिंग परिवर्तन करवाने के दुष्परिणाम। कारण पिता की बेटा प्राप्त करने की इच्छा। विजय तेंदुलकर का 'कमला' औरतों पर हो रही यौन हिंसा को व्यक्त करता है। कमला मध्य प्रदेश की जनजाति की लड़की है जिसे पत्रकार औरतों की बिक्री के लिए लगी मंडी से खरीद लाता है। यह सिद्ध करने के लिए कि आज भी औरतें खरीदी और बेची जाती हैं। पत्रकार की पत्नी, शिक्षित और आधुनिक विचारों की है। उसे अहसास होता है कि उसकी स्थिति कमला से बेहतर नहीं है। इसी क्रम में भीष्म साहनी का 'माधवी' है जो एक पौराणिक कथा पर आधारित है। जहाँ राजा ययाति अपनी सुंदर युवा बेटी को एक युवा तपस्वी गालव को दे देता है। माधवी को 'सदैव कौमार्य' का वरदान है। गालव को अपने गुरु को दिया वचन पूरा करना है, इसलिए वह उसे अयोध्या, काशी, भोजनगर आदि राजाओं के पास भेजता है। अंत में उसे राजा के भविष्य के उत्तराधिकारी पुत्र के लिए पूरी तरह से सही सिद्ध करने के लिए उसके शरीर के हर अंग की परीक्षा की जाती है। अंत में, इतने पुरुषों के साथ रही माधवी

को वापस अपने साथ पत्नी के रूप में रखने के लिए गालव स्वयं चिंतित हो जाता है। साथ ही, गुरु के साथ रही औरत को वह अपनी पत्नी कैसे मान सकता है? फिर भी गालव उसे अपनाने को तैयार है अगर वह अपना कौमार्य लौटा ले। स्वार्थ, लालसा, खोखली मान्यताओं और परंपराओं वाली पितृसत्तात्मक समाज में औरत मात्र भोग की वस्तु है। उसका अपना न कोई वर्चस्व है और न ही कोई व्यक्तित्व।

इन नाटककारों और इनके स्त्री पात्रों की तुलना जब स्त्री नाटककारों के पात्रों से करें तो कुछ अलग ही तथ्य सामने आते हैं। पुरुष नाटककारों की औरतें कहीं ज्यादा आक्रोशी, आक्रामक और अक्खड़ हैं जबकि स्त्री नाटककारों के स्त्री पात्र शांत, संयमी, विनम्र, सहानुभूतिपूर्ण और मानवीय हैं। अपने विरोध व्यक्त करने में भी उनमें एक संयम है। जैसे शांति मल्होत्रा का 'ठहरा हुआ पानी', मन्नू भंडारी का 'बिना दीवारों के घर', मृदुला गर्ग का 'एक और अजनबी' जैसे नाटकों के स्त्री पात्रों को देखा जा सकता है। इसी क्रम में कुसुम कुमार का 'सुनो शेफाली' में शेफाली का चरित्र महत्वपूर्ण है। शेफाली अनुसूचित जाति से संबंध रखती है लेकिन साहसी, उद्यमी और स्वाभिमानी है। वह समाज के शक्तिशाली, पूंजीवादी और जातिभेद के समर्थकों के विरोध में खड़ी होने का साहस करती है। अपने संघर्ष में उतरकर भी वह अपनी बहिन के साथ उसकी शादी की स्वीकृति देकर न्याय नहीं कर पाती। साथ ही, वह अंत में शोषण, अन्याय और शक्ति प्रदर्शनकारियों के विरोध में चुप्पी के समुद्र में डूब जाती है। सच है कि सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ़ लड़ाई इतनी आसान नहीं होती। यह सच औरत का ही नहीं, पुरुष का भी है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक 'लड़ाई' में सत्यव्रत का भी यही अंत होता है।

इंद्रपुरी भाटिया का 'बलमजी तुम आगे मैं पीछे' में पुरुष पात्र नहीं है। कई औरतें हैं। 'करवा चौथ' व्रत तोड़ने के लिए धोखेबाज पति की प्रतीक्षा करती मूर्ख पत्नी के प्रति भी नाटककार सहृदय हो जाती है। नाटक अपना व्यंग्य खोकर एक विरोधाभास में समा जाता है। त्रिपुरारी शर्मा निर्देशक के साथ-साथ नाटककार भी है जिनके नाटकों में औरतों की दशा और सामाजिक सरोकार हैं। 'बहू' में मध्यमवर्ग की औरत के संघर्ष की कथा है। 'रेशमी रुमाल' में औरत के दमन, दर्द, घुटन को चित्रित किया गया है। उसे कुछ विश्रांति लोक संगीत और उत्सव और त्यौहारों से मिलती है। परिवार की घुटन, रिश्तों की कड़वाहट त्रासद परिस्थितियां उसके जीवन को नरक बनाते हैं। पर उसकी नियति उसी में रहने की है। त्रिपुरारी शर्मा 'सन् सत्तावन का किस्सा : अज़ीज़ुनिसां' कई कारणों से महत्वपूर्ण है। शायद इसका कोई ऐतिहासिक आधार हो। एक तरफ इसमें 1857 की पृष्ठभूमि में मंगलपांडे जैसे क्रांतिकारी हैं और दूसरी ओर, एक वेश्या-जो देशभक्ति से प्रेरित होकर और अपने प्रेमी सिपाही के कारण स्वयं सिपाही बनकर लड़ाई में हिस्सा लेती है, लेकिन हार जाती है किन्तु उसे सिपाही मारता नहीं क्योंकि वह औरत है। एक तरफ बाजीराव और नाना साहेब जैसे चरित्र हैं। लेकिन केंद्र में एक अनजानी वेश्या है। सवाल है- क्यों औरतों को अपने को सिद्ध करने के लिए पुरुष बनना पड़ता है? यह सवाल आज भी प्रासंगिक है।

पिछले चार दशकों की सघन रंगयात्रा से गुज़रने के बाद अब जबकि थोड़ा ठहराव आ गया है तो, ज़ाहिर है स्मृतियाँ कौंधती होंगी।

रंगकर्मी **पापिया दासगुप्ता** से विनय उपाध्याय और एकता गोस्वामी का संवाद

आज़ादी के बाद नया आकार लेती कला की दुनिया में ख़ासकर नाटकों को लेकर उत्साह, उद्वेलन और उत्कर्ष की जो दिशाएं खुलीं उनमें महिला रंगकर्मियों की रचनात्मकता भी अलग से ध्यान खींचती है। मध्यप्रदेश के नवसांस्कृतिक अभ्युदय की ऐसी उजली तारीखों में राजधानी भोपाल को अपनी रंग-उमंग भरी सक्रियता से नई पहचान देने एक जाँबाज, खिलंदड़ और प्रतिभाशील कलाकार ने रंगमंच पर दस्तक दी... पापिया दासगुप्ता।

अनेक नाटक, अनेक किरदार। अब आधी सदी के आसपास फैल गई सृजन की ऊर्जा इस मोहतरमा को कुछ नया सोचने, रचने और कहने के लिए ज्यादा ही उकसाने लगी है। अभिनय, अध्यापन, लेखन और निर्देशन को पापियाजी ने अभिव्यक्ति के सहज माध्यम के बतौर चुना। मंच, रेडियो और दूरदर्शन पर प्रस्तुति की कसौटियों को पार किया। सिद्धि-प्रसिद्धि बटोरी। बंगाल की सांस्कृतिक चेतना उनके खून में आई लेकिन हिन्दी रंगमंच पर उनकी आमद जिस ठसक के साथ हुई उसने अनेक कलाकार युवतियों का संकोच तोड़ उन्हें थिएटर की चौखट तक लाने में महत्वपूर्ण प्रेरणा का काम किया। पापियाजी ने अतिरिक्त महत्वाकांक्षाओं से हमेशा फासला रखा और अपनी स्वाभिमानी शख्सियत के प्रति सदा चौकस रहीं। इस साक्षात्कार में पापियाजी के कई जाने-अनजाने रंग।

हर कला को होती है आलोचना की दरकार

कैसा लगता है अतीत से गुफ़्तगू करते हुए। वो दौर.... ये दौर....??

मेरे लिये जीवन के सभी पड़ाव महत्वपूर्ण हैं। मैं किसी भी कालखण्ड को बेहतर या कमतर नहीं मानती। जीवन में सभी काल का महत्वपूर्ण, पर अलग अलग योगदान रहता है। अगर बात मेरी रंगयात्रा की है, तो हाँ उस यात्रा की गति थोड़ी धीमी ज़रूर हो गई है। पर आज भी किसी रंगशाला में प्रवेश करते समय मैं उसी जोश और आनन्द का अनुभव करती हूँ। मंच के इस पार हूँ या उस पार, उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। जब रंगकर्मियों के साथ बैठती हूँ तो अनायास ही पुरानी बातें छिड़ जाती हैं। मज़ेदार यादें, और गलतियों को याद कर ठहाके लगाते हैं। नये युवा रंगकर्मियों के साथ अपने अनुभव बाँटने में भी मज़ा आता है। नाट्य विद्यालय के नौसिखिये प्रशिक्षार्थी, गुज़रे जमाने के प्रामटिंग के और डायलाग भूलने के किस्से सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। लाईव म्युजिक की गलतियों के किस्से भी कम मज़ेदार नहीं हैं। यह सभी यादें बचपन की अम्ल मधुर यादों की तरह हैं, जिन्हें सुनाते या याद करते समय मैं फिर से उन्हीं पुराने अनुभवों से गुज़ारती हूँ। बचपन की यादों को क्या कभी कोई भुला पाया है, पर इसका यह मतलब नहीं कि परिणत जीवन की उपलब्धियाँ कुछ कम हों।

यूँ तो कला के प्रति नैसर्गिक लगाव और संस्कार आपके भीतर हैं लेकिन क्या बांग्ला पृष्ठभूमि आपके कलाकार को गढ़ने में महत्वपूर्ण रही है?

हाँ, कला, संस्कृति, संगीत, रंगमंच मुझे विरासत में मिली है। मैं इसी परिवेश में पली बढ़ी हूँ। होश संभालते साथ मैंने अपने पंचेन्द्रियों से इनको ग्रहण किया था। घर में साहित्य, संगीत, नाटक और अन्यान्य विविध कलाओं का माहौल था। हालांकि हमारा परिवार प्रवासी बंगाली परिवार रहा, पर थे तो हम जन्मजात बंगाली ही। सो बंगाली कला प्रेम से अछूते नहीं थे। बांग्ला साहित्य का ज़बरदस्त प्रभाव, साथ ही रंगमंच से लगाव, ऊपर से घर वालों का प्रोत्साहन, और चाहिये क्या था?

मेरी दादी लेखिका थीं। माता, पिता, चाचा, मौसियाँ सभी नाटक और नृत्य संगीत के क्षेत्र में पारंगत थे। मैं तीसरी पीढ़ी की कलाकार रही। हमारी चौथी पीढ़ी में बेटा भास्कर, पठन-पाठन, लेखन और बेटी शिल्पी सिनेमा शिल्प से जुड़े हैं। आशा है आगे भी यह सिलसिला चलता रहेगा। प्रसंगतः उल्लेखनीय है, मेरी बहू संगीता लेखिका है और पोती, छोटी सी दीया बैले कलाकार है (लंदन में)।

आप इलाहाबाद से भोपाल आयीं और भोपाल के रंग परिवेश से एक अंतरंग रिश्ता बना। उस दौरान भोपाल के रंगमंच की क्या दशा और दिशा थी?

मैं सन् 1966 में शादी के बाद भोपाल आई। शुरू-शुरू में बहुत खालीपन महसूस करती थी। साल भर, स्कूल कॉलेज, यूनिवर्सिटी में प्रोग्राम करते हुये व्यस्त रहती थी। यहाँ, नये माहौल में कुछ भी करने का मौका नहीं मिल रहा था। नाटक भी बहुत कम होते थे। देखने तक का मौका नहीं मिलता था। मेरे रुझान को देखते हुये मुझे पहला ब्रेक, मेरे बड़े भाई समान, बेनूदा (श्री बेनू गांगूली) ने दिया। मैंने एक बांग्ला नाटक में अभिनय किया। और मुझे जिन लोगों से प्रोत्साहन मिला, उनमें प्रमुख थे श्री तरुण भादुड़ी और इंदिरा भादुड़ी, श्री शशांक मुखर्जी और प्रज्ञा मुखर्जी।

मेरा भोपाल का पहला अभिनय, पता नहीं कैसे, तत्कालीन मंत्री तथा कवि श्री विट्ठल भाई पटेल ने देखा था और उन्होंने उस समय के जाने माने नाट्य निर्देशक, भाऊ साहब खिरवड़कर से उसका ज़िक्र किया। और कालान्तर में मैं भाऊ साहब के रंगायन से जुड़ी। वह जुड़ाव आज भी कायम है। उस समय भोपाल में गिने चुने नाट्यकर्मी ही थे, जिनमें अधिकतर महाराष्ट्रीयन कलाकार थे। अधिकतर मराठी नाटकों के हिन्दी अनुवाद ही मंचित होते थे। संवाद अदायगी में मराठी का पुट होता था। अभिनय के क्षेत्र में अति अभिनय के प्रति झुकाव था। शायद इसीलिये उन दिनों मेरा स्वाभाविक शैली का अभिनय लोगों ने पसन्द किया था।

जिस वक्त आप रंगमंच पर सक्रिय हुईं उस समय महिला रंगकर्मियों के प्रति समाज और थिएटर की निगाह कैसी थी?

उन दिनों भोपाल में, आज ही की तरह महिला रंगकर्मियों का टोटा था। लड़कियाँ इस क्षेत्र में आने में झिझकती थीं। मामा, चाचा, दादाओं के पहचान के बिना लोग घर की लड़कियों को नाटक में काम करने नहीं देते थे। अगर राज़ी हो भी गये, तो ले जाने और छोड़ने के शर्त के साथ। अंतरंग दृश्य तो दूर, हाथ तक पकड़ने की सख्त मनाही थी। निदेशक भी इन दृश्यों से बचते बचाते नाटक की परिकल्पना करते थे। डायलॉग भले ही बुलवा लो, पर नो एक्शन प्लीज!

आपको एक महिला रंगकर्मी होने के नाते अपने सपनों, संघर्षों और नई चुनौतियों से किस तरह जूझना पड़ा या आपके हिस्से में वैसे उलझने नहीं आयीं जैसी कि अन्य रंगकर्मी बयान करते हैं?

नहीं, मुझे कोई ख़ास उलझनों का सामना नहीं करना पड़ा। कई महिला कलाकारों से समस्याओं के बारे में सुना करती थी। पर मुझे कभी कोई बुरा अनुभव नहीं हुआ। हमारे रंगायन में हम सब एक परिवार की तरह थे। कभी कोई किसी से दुर्व्यवहार नहीं करता था। सभी साथी कलाकार, समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। भाऊ साहब हर किसी के दल में शामिल नहीं करते थे। काफी ठोक बजाकर ही लेते थे।

मुझे तो सभी से मर्यादित व्यवहार ही मिला। दर्शकों से भी हमेशा सम्मान और प्रोत्साहन मिला। वैसे भी इस ज़माने में सिर्फ गणमान्य दर्शक ही नाटक देखने आते थे। साधारण जन में नाटक का प्रचलन नहीं था। शायद यह पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव था कि थियेटर ईलीट वर्ग और सिनेमा आम जनता के मनोरंजन का साधन था। बाद में एक बार हमने उर्दू अकादमी की तरफ से 'अमीर ख़ुसरो' नाटक का मंचन किया। सुना था, भोपाल के सिटी इलाके में रहने वाली जनता जिन्होंने कभी नाटक नहीं देखा था, उनके लिये वह नाटक खेला गया, सराहना की थी।

मुख_मुद्राएँ :_ पापिया

उन दिनों भोपाल में, आज ही की तरह महिला रंगकर्मियों का टोटा था। लड़कियाँ इस क्षेत्र में आने में झिझकती थीं। मामा, चाचा, दादाओं के पहचान के बिना लोग घर की लड़कियों को नाटक में काम करने नहीं देते थे। अगर राज़ी हो भी गये, तो ले जाने और छोड़ने के शर्त के साथ। अंतरंग दृश्य तो दूर, हाथ तक पकड़ने की सख्त मनाही थी।

जिन निर्देशकों के साथ बहुतायत में आपने काम किया उनमें मनोहर आशी का नाम प्रमुख से लिया जाता है। इस रचनात्मक आपसदारी का कृपया खुलासा करें। इसके अलावा उन निर्देशकों के अनुभव भी साझा करें जिनकी गहरी छापें आपके ज़ेहन पर पड़ीं?

शुरुआती दिनों में मैं केवल भाऊ साहब के नाटकों में काम करती थी। पर बाद में मैंने लगभग सभी शीर्षस्थ निर्देशकों के साथ काम किया। उनमें कारन्त जी, बंसी कौल, एम.के. रैना, बृजमोहन शाह और प्रशान्त खिरवड़कर का नाम प्रमुख है। पीटर ब्रुक के वर्कशॉप में भी मैंने प्रशिक्षण पाया। सभी से बहुत कुछ सीखा। पर कारन्त जी को मैं विशेष श्रद्धा करती थी। उनसे मैंने थियेटर की बहुत सारी बारीकियां सीखी थीं।

आप भूगोल की प्राध्यापक रही हैं। क्या इस विषय की आपकी कला में सहभागिता रही?

जी हाँ। भूगोल पढ़कर, मैंने देश और विदेश को जाना, पहचाना। विभिन्न संस्कृतियों को जाना। लोगों में प्रचलित परम्पराओं और आचार आचरण के भौगोलिक कारणों को जाना। यह भूगोल के प्रति रुचि का ही फल था कि मुझमें भ्रमण की इच्छा जागृत हुई। देश विदेश में भ्रमण कर, विभिन्न लोगों और उनके आचार आचरणों को जाना। इस तरह समझ का प्रसार होने पर विभिन्न चरित्रों में मैं अपने को सहजता से ढाल पाती हूँ।

आपने रंगमंच में कहानियों को लेकर भी काम किया है। एक नैरेटिव शैली है और दूसरी नाट्य शैली। दोनों में क्या अंतर है? किसे बेहतर मानती हैं?

दोनों ही शैलियों का अपना अपना महत्व है। नैरेटिव शैली में सारा बोझ अपने कन्धे पर ढोना पड़ता है। नाट्य शैली में यह भार साझा हो जाता है।

एकल प्रस्तुतियों की ओर आपका कैसा और कब रुझान हुआ? अब तक कितनी प्रस्तुतियाँ दीं? क्या अब भी किसी नयी एकल अभिनय प्रस्तुति का मन है?

एकल प्रस्तुति तैयार करने का मन बहुत पहले से था। पर मौका नहीं मिला था। कारगिल युद्ध के बाद, युद्ध की विभीषिका और त्रासदी के कई नमूनों से मेरा साक्षात्कार हुआ। उसके बाद मैंने अपनी पहली एकल प्रस्तुति- 'एक लापता सैनिक की माँ' के जरिये युद्ध सम्बन्धी कई प्रश्नों के जबाव ढूँढने की कोशिश की। इस एकल नाटक की कई प्रस्तुतियाँ विभिन्न शहरों और प्रतिष्ठानों में कीं। मुझे यू.जी.सी. के तरफ से एक प्रोजेक्ट भी मिला- जिसके तहत कई गर्ल्स कालेजों में भी मैंने प्रस्तुति दी। अजमेर के सोफिया कॉलेज में एक ही शाम दो प्रस्तुतियाँ दीं। एक छात्राओं के लिये, और आधे घन्टे बाद ही वहाँ चल रहे एक सम्मेलन में आये हुये ईसाई पादरियों और ननों के लिये प्रस्तुति दी। इस नाटक की कुल तीस प्रस्तुतियाँ दे चुकी हूं।

एकल नाट्य प्रस्तुति का अनुभव बहुत अच्छा रहा। दूसरे शहरों में जाना आसान रहता है। दो या तीन व्यक्तियों के दल के साथ तादात्म्य भी अच्छा बन पाता है। आगे भी एकल नाट्य प्रस्तुति देने की इच्छा है, मेरी अपनी स्क्रिप्ट तैयार है। शुरू करने भर की देर है।

आपने रेडियो रूपकों में भी हिस्सा लिया है। सुना है कि विवेकानंद पर केन्द्रित एक रेडियो शो बना रही हैं। रेडियो रूपक और रंगमंच में जो तकनीकी फ़र्क है क्या वह अभिव्यक्ति के स्तर पर विषय वस्तु के प्रभाव में भी फ़र्क ला देता है?

मैं रेडियो में पिछले 40-42 सालों से काम कर रही हूँ। मंचीय नाटक और रेडियो नाटकों में काफी फ़र्क है। मंच पर पूरे शरीर, भाव, और वचन से संवाद अदायगी होती है। पर रेडियो में सिर्फ आवाज़ के सहारे, चरित्र और भावों को व्यक्त करना पड़ता है। स्वरों का उतार चढ़ाव और सांसों का खेल है रेडियो नाटक। आजकल मैं स्वराज संस्थान के एक प्रोजेक्ट - 'युग प्रवर्तक विवेकानंद' का काम कर रही हूँ। उसकी स्क्रिप्ट तैयार की है मैंने। शोधपरक काम है। इसे तैयार करते वक्त मैंने भी बहुत कुछ जाना है इन अद्भुत ज्ञानी महापुरुष के बारे में।

रेडियो एक श्रव्य माध्यम मात्र है, उसमें नाटकीयता और विभिन्न जानकारियाँ देना आसान काम नहीं। मंच पर दर्शक देखकर और सुनकर चीज़ों को समझते हैं। पर मंच का दायरा भी सीमित होता है। कुछ ही पलों में अलग अलग स्थानों में दर्शकों को ले जाना संभव नहीं होता। जो रेडियो में आवाज संगीत और इफेक्टों के ज़रिये संभव हो पाता है। दोनों माध्यमों के स्क्रिप्ट में भारी अन्तर होता है। दोनों में अलग अलग तरीके से भावों को अभिव्यक्त करना पड़ता है। मंच पर जहां एक नज़र भर डालकर

काफी कुछ व्यक्त कर सकते हैं, रेडियो में उसी भाव को शब्दों के सहारे बताना पड़ता है। खैर, दोनों ही माध्यमों में अभिनय के सहारे चरित्रों को उकेरना पड़ता है।

कला और रंगमंच को लेकर बंगाल जहाँ बहुत समृद्ध है वहीं, हिन्दी रंगमंच ने एक लंबा सफर तय कर ख़ुद को खड़ा किया है। आपने दोनों से नातेदारी बनाई। अपने अनुभव साझा करें?

भोपाल में आकर मेरी रंगयात्रा बांग्ला नाटकों से शुरू हुई। दो या तीन सालों के बाद मैंने हिन्दी नाटकों में काम करना शुरू किया। पर यहाँ मैंने देखा कि बांग्ला नाट्यकर्मियों के मुकाबले हिन्दी नाटकों के कलाकार ज़्यादा अनुशासित हैं। समय की पाबन्दी, संवादों को याद करना या निर्देशक की बातों को मानने और उसे क्रियान्वित करने में वे ज़्यादा तत्पर रहते हैं। मुझे काम के प्रति यह समर्पण भाव बहुत अच्छा लगा, और धीरे धीरे मैंने बांग्ला नाटकों में काम करना कम कर दिया।

आज हम टैगोर का 150वाँ जयंती वर्ष मना रहे हैं। उनके साहित्य और कला को लेकर कई काम हो रहे हैं। उनकी विभिन्न विधाओं का रंगमंचीय रुपांतरण हो रहा है आप ख़ुद भी एक प्रस्तुति से जुड़ीं। कैसा लग रहा है जो कुछ चल रहा है?

रवीन्द्रनाथ ठाकुर तो एक सागर हैं। कितना ही उनका साहित्य पढ़ लें नाटक-गाने कर लें, या गा लें, नृत्य नाटिकाओं का प्रस्तुतिकरण कर लें, फिर भी लगता है उस सागर में डूबना तो दूर, पाँव की उंगलियाँ भी भिगो नहीं पाई हूं। हर महापुरुष के जयन्ती वर्ष में कार्यक्रमों की बाढ़ आ जाती है। रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के साथ भी ऐसा ही हुआ। कुछ उन्हें समझकर, और ज़्यादातर उन्हें बिना समझे, अपना अपना इन्टरप्रिटेशन प्रस्तुत करते हैं। टैगोर को बहुत गहराई से समझा जाना चाहिये। गीत और नृत्य का भी उनका अपना स्टाईल था, जो काफी चिन्तन मनन के बाद उन्होंने रचा था। बहुत ही परिष्कृत और सूक्ष्म हास परिहास है, जिन्हें उसी रूप में प्रस्तुत न करने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

> पहले, हर नाटक की प्रस्तुति के बाद, शहर के बुद्धिजीवी साथ मिलकर बैठते थे। आलोचनायें होती थीं। सवाल जवाब होते थे। बाहर के नाट्य दलों की प्रस्तुतियों के बाद अगले दिन सुबह रवीन्द्र भवन के ऊपरी हॉल में, या और कहीं इस प्रकार का जमावड़ा होना, आम बात थी। बाल के खाल निकाले जाते थे। उन बहसों और चर्चाओं से हमने बहुत कुछ सीखा, जाना।

आजकल टैगोर की रचनाओं के साथ कई प्रयोग हो रहे हैं। जैसे उनके पात्रों को मयूरभंज या पुरुलिया के छाऊ शैली में प्रस्तुत करना या उनकी कहानियों को तोड़ मरोड़कर मंचन करना आदि। कुछ प्रस्तुतियों को आज के माहौल के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जा रहा है। कुछ प्रयोग तो ठीक लगते हैं पर ज्यादातर कैरीकेचर सा प्रतीत होता है। मैं पूर्णतः परम्परावादी नहीं हूं, मुझे भी नये प्रयोग अच्छे लगते हैं। पर अति से मुझे परहेज है।

भारत भवन रंगमंडल का ज़मींदोज़ होना और राज्य नाट्य विद्यालय का उदित होना...। आपकी प्रतिक्रिया?

भारत भवन रंगमंडल का विलय, हिन्दी नाटकों के लिये सुनामी का कहर जैसा था। और नाट्य विद्यालय का उदित होना, उस खण्डहर पर नई इमारत के बनने जैसा है।

आज के निर्देशकों के काम को लेकर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

आजकल नाटकों की बाढ़ सी आई है। हर दिन नये नये निर्देशकों का काम देखने को मिलता है। पर वह स्तर कहाँ? नाट्यकर्मी, दो नाटकों में अभिनय कर लेने के बाद ही अपने को निर्देशक के लायक मानने लगते हैं। चार लोगों को इकट्ठा करके, एक नाटक खेल लिया। शायद दस नाटक भी चाहे देसी हो या विदेशी, नहीं पढ़े होंगे उन्होंने। बहुत सतही लगती हैं- वे प्रस्तुतियाँ; पर हाँ कुछ अच्छे निर्देशक भी हैं जिनके नाटक देखने भारी भीड़ होती है।

आप इतने लंबे समय तक रंगमंच पर काम करती रहीं हैं आपके मन में कभी निर्देशक बनने की अकुलाहट नहीं हुई?

अभिनय के साथ साथ निर्देशन का काम भी मैं करती रही। अभी हाल ही में चेखव के दो नाटकों का हिन्दी रुपान्तरण कर मैंने उनका मंचन किया। भोपाल के वरिष्ठ नाट्यकर्मियों ने मेरे साथ काम किया।

घर, परिवार नौकरी, और एक उम्र के साथ जुड़ी हुई अपनी ख़्वाहिशों को पूरा करने की फ़ितरत। इन सबके बीच में हाड़-तोड़ मेहनत माँगने वाले थियेटर के प्रति आपकी गहरी आसक्ति पूरी की। क्या अब संतुष्ट हैं?

घर, परिवार, नौकरी तथा रंगमंच, सभी मेरे लिये समान महत्वपूर्ण रहा। रंगमंच में जितना समय देना चाहिये था- दिया। इसके लिये मैं अपने पति श्री रवि दासगुप्ता की आभारी हूँ- कि उन्होंने मेरे इस जुनून को समझा और हमेशा मुझे सहयोग दिया। बच्चों ने भी बड़े होने पर मेरा साथ दिया। आज मैं अपने

आप को सन्तुष्ट मानती हूं क्योंकि मेरे बच्चे समाज में प्रतिष्ठित हैं। नौकरी भी मैंने पूरी ईमानदारी के साथ की। मेरे विद्यार्थी जब कामयाब होकर, मेरा आशीर्वाद लेने आते हैं तो मेरी आंखें भर आती हैं। वे ही मेरी पूंजी हैं, मेरी कमाई हैं।

भोपाल/म.प्र. में आपने छुट-पुट बच्चों के लिए भी काम किया है माना ये जाता है कि बच्चों के लिए रंगकर्म को लेकर बड़े रंगकर्मी सक्रिय नहीं रहे। (तनवीर, बंसी कौल, कारंत)। और आज के रंगकर्मी प्रायः बच्चों के लिए आगे नहीं आते (गर्मी की छुट्टियों में अंशकालीन कार्यशालाओं की होड़ मची रहती है)। पर नियमित रूप से कार्य नहीं हो रहे इस बारे में क्या राय है?

मैंने बच्चों के साथ कई काम किये हैं। पर अधिकतर बांग्ला में। नाटक, नृत्य नाटिका, संगीत, नृत्य सभी विधाओं में काम किया है। उनमें प्रमुख हैं- अलीबाबा, चन्डालिका, चित्रांगदा, रुपक नाटक ''ह ज ब र ल'' आदि। मैंने देखा कि आजकल बच्चे, पढ़ाई में इतने व्यस्त रहते हैं कि इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिये इनके पास समय ही नहीं है। उनके माता पिता भी समय निकालकर उन्हें रिहर्सल के लिये नहीं ला पाते हैं। बच्चे बिचारे तो पढ़ाई, ट्यूशन कोचिंग, कम्प्यूटर के बोझ तले दबे पड़े हैं। कब आयेंगे नाटक, नाच या गानों की रिहर्सल में?

आजकल बहुत जल्दी निर्देशक बन जाने की फ़ितरत कलाकारों पर हावी है। ज़्यादातर रंगकर्मी परियोजना केन्द्रित रंगकर्म के लिये आगे आये हैं। आप इस उत्साह को किस तरह से देखती हैं?

आजकल के भोगवादी समाज में, हर काम को पैसे से जोड़कर देखा जाता है। नाटक ही क्यों अछूता रहे? और फिर आजकल नाटक करना बहुत महंगा हो गया है। हॉल, लाईट, पोशाक, पब्लिसिटी सभी में पैसा लगता है। इसलिये शायद परियोजनाओं की तलाश रहती है। चलो इसी तरह अगर रंगकर्म का प्रवाह जारी रहे तो क्या बुराई है? काम अगर स्तरीय हो तो कोई बात नहीं।

भोपाल इस समय तीन या चार पीढ़ी के रंगकर्मियों की छावनी है। लेकिन इन पीढ़ियों के बीच एक सार्थक सृजनात्मक संवाद की कमी महसूस की जाती है। सब बँटे बँटे से...। क्या आपके दौर में भी ऐसा ही था?

भोपाल में पहले के मुकाबले, रंगकर्मियों की एक बहुत बड़ी फ़ौज मौजूद है। पर जैसा कि आपने कहा - पुरानी और नई पीढ़ी के कलाकारों में तादात्म्य नहीं है। आज के नाटकों में पुराने कलाकार कम ही काम करते दिखते हैं- शायद देखने भी नहीं जाते। दोनों पीढ़ियों को अपना अपना मौन भंग कर आगे आना चाहिये। इससे सम्पूर्ण नाट्य जगत का भला होगा। हमारे समय में हम जब मंच पर होते थे तो कई पीढ़ी, मंच के पीछे का काम सम्भालते थे। यानि किसी न किसी तरह हम सब जुड़े थे।

किसी भी कला के साथ आलोचना की दरकार भी होती है। एक सम्यक विश्लेषण जो नाटक के पहलुओं पर ज़रूरी विमर्श हो क्या यह पूर्ति ठीक से हमारे समय में हो पायी है?

पहले, हर नाटक के प्रस्तुति के बाद, शहर के बुद्धिजीवी वर्ग साथ मिलकर बैठते थे। आलोचनायें होती थीं। सवाल जवाब होते थे। बाहर के नाट्य दलों की प्रस्तुतियों के बाद अगले दिन सुबह रवीन्द्र भवन के ऊपरी हॉल में, या और कहीं इस प्रकार का जमावड़ा होना, आम बात थी। बाल के खाल निकाले जाते थे। उन बहसों और चर्चाओं से हमने बहुत कुछ सीखा, जाना। निर्देशक भी सुझावों पर अमल करते थे। आजकल तो यह पक्ष देखने को ही नहीं मिलता। सभी निरासक्त हो गये हैं। किसी को किसी दूसरे की प्रस्तुति से जैसे कोई सरोकार ही नहीं रह गया।

नाटक विचार और मनोरंजन से भरपूर कला है। यह सामाजिक जागरण की एक लोकतांत्रिक विधा है। क्या कारण है कि नाटक आज समाज में वैचारिक उद्वेलन पैदा करने में असमर्थ है। दर्शकों पर गौर करें तो प्रायः वहीं चेहरे। क्या नाटक को तयशुदा प्रेक्षागृहों से बाहर निकलने की ज़रूरत है?

नाटकों के सामाजिक महत्व पर प्रश्न ही नहीं उठता। नाटक तो समाज का ही दर्पण है। सभी नाटकों में, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, कोई न कोई सामाजिक महत्व का सन्देश ज़रूर होता है। अगर ईमानदारी से नाटकों में समाज की विसंगतियों को प्रस्तुत किया जाये तो दर्शक अवश्य ही उद्वेलित होते हैं। हमें तो कई नाटकों में यह अनुभव हुआ है। 'व्यक्तिगत' नामक नाटक के लगभग हर प्रदर्शन के बाद कई महिला दर्शकों ने मुझसे कहा कि उन्होंने नाटक में उनके अपने जीवन की परछाई देखी है। और अब वे उन परेशानियों का मुकाबला डटकर करेंगी।

नाटकों के साथ समाज के हर वर्ग का जुड़ना ज़रूरी है, जो वास्तव में हो नहीं पाता। टी.वी. और सस्ते सिनेमा का मोह त्यागना सहज नहीं। आम जनता के जीवन में आजकल इतनी समस्यायें हैं कि वह शायद और किसी गम्भीर विचारणीय विषयों से दूर रहना चाहता है। हर कोई सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील नहीं है। सब अलग थलग रहकर, अपने व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में ही व्यस्त हैं।

मैं तो लोक संस्कृति को बहुत ही समृद्ध मानती हूं। अपने जीवन में, जहां भी मौका मिलता है, उन्हें अपनाने में नहीं हिचकती। चाहे वह गृहसज्जा हो या पहनावा, लोककला की झलक मुझे अच्छी लगती है। लोकनृत्य और लोकगीतों से बेहद लगाव है। लोकशैली के कई नाटकों में भागीदारी की है। असल में हमारे देश की आबोहवा में लोक संस्कृति ही जँचती है। हमारे यहाँ इतनी गर्मी और धूल है कि कार्पेट कहाँ बिछायें? हाँ समय के साथ हमारे रहन सहन में कई पाश्चात्य प्रभाव घुल मिल गये हैं। पर उन चीज़ों को ही अपनाना चाहिये जिनसे जीवन आसान बन जाये। अंधा अनुकरण हमेशा अच्छा नहीं होगा। सभी पहलुओं में संतुलन बनाकर चलना ज़रूरी है। लोक कलाओं को अपनाने पर अपनी एक अलग पहचान बनती है। और इससे मुझे बहुत संतुष्टि मिलती है।

कविता के गाँधी

-उदय प्रकाश

किसी कवि के न रहने के बाद यह कहना कि उसका सही मूल्यांकन अब तक नहीं हो पाया या उसकी उपेक्षा की गई, एक तरह की औपचारिक रुढ़ि बन चुकी है। भवानी भाई के बारे में भी अब ऐसा कहने पर यही अर्थ लिया जायेगा। फिर भी अगर उनकी सारी रचनाओं से कोई एक साथ सामना करे तो निश्चित रूप से वह चौंके बिना नहीं रह सकता। यह एक अत्यंत मामूली सी वास्तविकता है कि वे छायावादोत्तर काल के एक बड़े कवि थे। उनसे भी बड़े, जिन्हें स्वाभाविक रूप से आज हम बड़ा मानने के आदि हो चले हैं। क्योंकि हमारे समय के लेखक, बुद्धिजीवी, आलोचक, संगठक, अखबार और पत्र-पत्रिकाएँ उन्हें बड़ा सिद्ध करने पर तुले हैं। भवानी भाई को बड़ा सिद्ध करने के लिए ऐसा संगठित और व्यापक प्रयत्न कभी नहीं हुआ, इस सब में उनकी खुद अपनी रुचि भी नहीं थी और इसके लिए जिन्होंने जुगाड़ भी नहीं जमाया।

शताब्दी पुरुष

भवानी प्रसाद मिश्र

वे 'कविता के गाँधी' थे। शब्दों की पूनी उनके पास थी, चुटकी उनकी सधी थी और उनके चरखे की लय बंधी हुई थी। जो कुछ उन्होंने काता-बुना इतना ख्याल जरूर रखा कि यह सिर्फ उनके अपने और दो चार लोगों का जरीदार वस्त्र ही बनकर न रह जाए, बल्कि वह तमाम साधारण लोगों के तन-मन को भी थोड़ी-बहुत ऊष्मा पहुँचाए।

लेकिन यह भी वास्तविकता है कि नयी कविता के कवियों में वे सबसे ज्यादा लोकप्रिय कवि थे। उनकी कविताओं की सादगी, सरलता और संप्रेषणीयता किसी भी साधारण पाठक को तुरंत प्रभावित करती थी। 'सतपुड़ा के घने जंगल' और 'गीत बेचता हूँ' जैसी कविताएँ अभी भी अनगिनत लोगों को याद होंगी। लेकिन लोकप्रियता और सहजता आज के 'एलीट' और उच्चस्तरीय साहित्यिक प्रभुओं के बीच रचनाकार की निकृष्टता का सबसे बड़ा सबूत है। भवानी भाई की कविताएँ इन प्रभुओं-भाग्यविधाताओं को इसलिए बहुत विलक्षण और उत्कृष्ट नहीं लगती थी क्योंकि ये कविताएँ हर किसी की समझ में आ जाती थीं। साधारण श्रोता भी उनसे स्पंदित होता था। साहित्यिक प्रभु बड़ा उसको बनाते हैं, जो सिर्फ उनकी समझ में आये, जो सिर्फ उनकी भाषा, संस्कार और रुचियों को ध्यान में रखकर लिखे। किसी कवि या लेखक को बड़ा बनाने का उनका तरीका है कोई बड़ा पुरस्कार दे देना, किसी अंतर्राष्ट्रीय या बहुराष्ट्रीय संगोष्ठी में उसे भेज देना, किसी अकादमी या संस्था का कोई बड़ा ओहदा दे देना, उसकी संपूर्ण रचनावली का प्रकाशन कराना, फिर इतिहास में उसे प्रतिष्ठित करने के लिए 'मिल-जुलकर' उसका उत्कृष्ट आलोचनात्मक मूल्यांकन करना। उसको कभी वाल्ट व्हिटमैन, कभी एजरा पाउंड, कभी इलियट सिद्ध करना।

हर कोई जानता है कि बड़ा होने के लिए केशव और कबीर के अलग-अलग रास्ते हैं। हजूरी, दरबारी और शहरी श्रेणी के लोग केशव को बड़ा बनाते हैं, लेकिन कबीर का रास्ता तो साधारण जनता के जीवन यथार्थ की ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों से होकर गुजरता है। भवानी भाई ने निराला या नज़ीर की तरह यह पगडंडी ही चुनी। उन्होंने शास्त्र या शास्त्रकार की बहुत परवाह नहीं की। प्रभुओं ने उसे उनका दंभ और अहंकार माना। भवानी भाई की एक पुरानी डायरी के पन्ने में लिखा है : 'अहंकार भी नहीं करने देंगे/ऐसे कहाँ के हैं आप?/आपको मेरे अहंकार पर दर्द किसलिए?/इसलिए न कि आप भी उससे थोड़े बहुत उधड़ते हैं/आपने मुझे बौनी प्रतिभा कहा/सो ठीक है/प्रतिभा तो हूँ/ आप तो बौने हैं न प्रतिभा हैं।'

यह निष्कपट, निश्छल गुस्सा किसी हताश और वंचित कवि का 'फ्रस्ट्रेशन' नहीं है। यह अपनी रचना के प्रति निष्ठा और आस्था का वह ताप है, जिससे भवानी भाई अपनी शक्ति अर्जित करते थे। और इसी शक्ति के दम पर वे सत्य कहने की हिम्मत बटोरते थे : 'सूर के, कबिरा के, तुलसी के चरण में सिर झुका कर/सच कहो गुरुदेव के आश्वासन आशीष पाकर' (दहन पर्व)।

जिन्होंने आपातकाल के दौरान उनकी लिखी हुई 'त्रिकाल संध्या' की कविताएँ पढ़ रखी हैं, वे सच कहने की इस शक्ति का थोड़ा-बहुत अनुभव कर सकते हैं। लेकिन कविता भवाई भाई के लिए सिर्फ किसी सत्य को अभिव्यक्त करने का माध्यम भर ही नहीं, वह सत्य को जानने का एक उपकरण भी रही है। भवानी भाई अगर छायावाद, नयी कविता से लेकर आज तक कभी साहित्यिक चर्चा के मुख्य केन्द्र में नहीं रहे तो इसका एक कारण यह भी है कि इतने लंबे लेखन काल की उनकी बड़ी संख्ती से चुनी हुई कविताओं का ऐसा संग्रह सामने नहीं आया, जिसमें उनकी कवि प्रतिभा की वास्तविक क्षमता का पता लोगों को चलता। दूसरा बड़ा कारण यह था कि जिन चीजों और विचारों

को उन्होंने पूरी निष्ठा और ईमानदारी से अपना रखा था, वे खुद आज के आधुनिक संसार में पिछड़ी और अप्रासंगिक मान ली गयी थीं। जैसे गाँधीवाद, सत्याग्रह, अहिंसा, वैष्णवी सहिष्णुता आदि। जब राजनीति में गाँधीवाद सिर्फ कथनी की चीज बनकर रह गया हो, दंगों और सांप्रदायिक विद्वेष की आग में जलते समाज में अहिंसा की धारणा एक सनक भरा विचार लगती हो, जब धर्म के पवित्र स्थल हथियारों और बारूद के आतंकवादी अड्डों में तब्दील हो गये हों, तब सत्याग्रह की बात एक पागल संत के अव्यावहारिक और खतरनाक प्रलाप के अलावा और क्या लग सकती है?

भवानी प्रसाद मिश्र ने इस सारे विचारों को विश्वास की हद तक अपना रखा था। अपने आपको वे 'गाँधी का बेटा' कहते थे। कहा जा सकता है कि वे हमारे देश को मौजूदा सांस्कृतिक-राजनैतिक आधुनिकता के राजपथ पर एक बैलगाड़ी की तरह दिखाई दे रहे थे। वह उस मनुष्य की तरह थे 'जो कम्प्यूटरों के एक विशाल कारखाने में अकेला खड़ा हो फिर उनका हुलिया भी आधुनिक सांस्कृतिक एलीटों की वेषभूषा से भिन्न था। खादी का कुर्ता-पायजामा, कस्बाती-किसानी चेहरा और वैसी ही देहाती बोली।'

कविता में पिछले डेढ़-दो दशकों से या तो पश्चिमी आधुनिकता का प्रभुत्व रहा या फिर सशस्त्र क्रांति के दमामे-नगाड़े बजते रहे। जिस तरह गाँधी और विनोबा स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में अप्रासंगिक रह गये थे, उसी तरह कवि भवानी भाई भी इस स्वातंत्र्योत्तर सांस्कृतिक माहौल में 'मिसफिट' हो गये थे, इस 'जनकवि' की सार्वजनिक दुर्दशा किसी भी दूसरे 'जननायक' की नियति से भिन्न नहीं थी।

गाँधी और उनके दर्शन के प्रति भवानी भाई का लगाव तब से था, जब से उन्होंने अपने आसपास के व्यापक परिवेश को जानने और समझने की कोशिश शुरू की थी। वे सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल भी हुए। दो वर्ष आठ माह, आठ दिन अंग्रेजी के कारावास में बिताये। संपूर्ण गाँधी वाङ्मय का संपादन 'गाँधी पंचशती' की कविताएँ और 'कुछ नीति कुछ राजनीति' में संकलित उनके निबंध इसके प्रमाण हैं कि गाँधीवाद उनके लिए सिर्फ एक वैचारिक प्रेरणा का स्रोत भर नहीं रह गया था, बल्कि उनकी चेतना और संवेदनातंत्र का एक अभिन्न हिस्सा बन गया था। निःसंकोच कहा जा सकता है कि वे 'कविता के गाँधी' थे। शब्दों की पूनी उनके पास थी, चुटकी उनकी सधी थी और उनके चरखे की लय बंधी हुई थी। जो कुछ उन्होंने काता-बुना इतना ख्याल जरूर रखा कि यह सिर्फ उनके अपने और दो चार लोगों का जरीदार वस्त्र ही बनकर न रह जाए, बल्कि वह तमाम साधारण लोगों के तन-मन को भी थोड़ी-बहुत ऊष्मा पहुँचाए। इसीलिए उन्होंने जो भाषा कविता के लिए चुनी, वह साधारण बोलचाल की भाषा थी। वे रूप और विषय दोनों स्तरों पर एक 'जनकवि' थे।

अहिंसा की अवधारणा और उनकी शक्ति पर भवानी भाई की इतनी अकूत आस्था थी कि उसकी शक्ति को वे कठिन से कठिन मौकों पर भी परखना चाहते थे। अक्टूबर 1962 में जब चीन ने भारत पर हमला किया, उसकी प्रतिक्रिया में राष्ट्रीयता की भावना का जो ज्वार उठा, वह अपने साथ बहुत से कवियों को बड़ा ले गया। मार्क्सवादी समझे जाने वाले बाबा नागार्जुन ने मार्क्सवाद के लबादे को ही फाड़कर फेंकने की बात कही। प्रगतिशील शमशेर ने कैलाशवासी शिव से त्रिशूल उठाकर तांडव करने की प्रार्थना की। 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध की भयावहता और अमानुषिकता का विरोध करने वाले राष्ट्रकवि दिनकर ने 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी युद्धकामी रचना लिख डाली। आज यह जानकर आश्चर्यचकित हुआ जा सकता है भवानी भाई ने 1962 में भी लिखा : 'लोग पूछते हैं आज गाँधी होते तो क्या करते/ बदल न देते क्या वे अपना सोचा-समझा सिद्धांत/... आता है अगर चीन तो उसे आने दो/और कहो उससे कि हम मारेंगे नहीं मरेंगे/और इंच-इंच जगह पर जब कब्जा करना पड़ेगा उन्हें/हजारों लोगों को मार-मार कर/तब देखना वे क्या करेंगे/.... आजादी मिलते ही अगर तोड़ दी होती हमने सेना/तो और सारी ताकतें अहिंसा की इकट्ठा होने लगतीं हमारे मन में।'

उनकी कविताएं तब भी हैं और रहेंगी। जब औद्योगिक आधुनिकता के तनावों से भाग कर कोई व्यक्ति कविता के अमरकंटक या कुल्लू-मनाली जाना चाहेगा, तो वह भवानी भाई की कविता की छांह में आयेगा। जब शस्त्रों की होड़, रोजमर्रा की हिंसा और युद्ध की डरावनी आशंकाओं और दुःस्वप्नों से भागकर कोई डरा हुआ आदमी कविता का कोई शांत कोना तलाशना चाहेगा तो उसे भवानी भाई की कविता में ठौर मिलेगा। जब राजनीतिक और व्यक्तिगत नागरिक जीवन की हैरतअंगेज पतनशीलता से ऊबकर और घबड़ाकर कोई ईमानदार व्यक्ति नैतिक शक्ति का कोई काव्य तिनका ढूँढ़ना चाहेगा तो भवानी भाई की कविताएँ उसे बुलाएंगी। जब पश्चिमी पत्रकारिता से उपजी और आक्रांत संचारमाध्यमी भाषा के आधुनिक कवियों की कृत्रिमता और असहजता से उकताकर कोई साधारण बोलचाल की निष्कपट और जीवित भाषा में बातचीत करना चाहेगा, तो भवानी भाई की कविताएँ उससे बतियाएंगी।

जनता के बीच जनता का कवि : गीतफरोश भवानी भाई

भवानी प्रसाद मिश्र स्मृति समारोह समिति, होशंगाबाद द्वारा 29 मार्च 2003 को प्रकाशित स्मारिका से साभार

बीसवीं शताब्दी के भारतीय शास्त्रीय संगीत के इतिहास में ऐसा पहली बार घट रहा था, जबकि परंपरा के दुःसाध्य अनुशासन को फलाँग कर एक गायक ने अपनी तपस्या से एक नए 'घराने' का निर्माण कर दिया जिसे आज 'इंदौर घराना' के नाम से एक सार्वदेशीय स्वीकृति मिल चुकी है। और यह गायक था इंदौर के शाहमीर मंजिल की दीवारों के बीच सांगीतिक आत्मसंघर्ष तय करता हुआ, युवा अमीर ख़ाँ, जिसे पिता की ख़्वाहिशों के मुताबिक एक 'सारंगी नवाज' बन जाता था। लेकिन उसने वाद्य नहीं, 'कंठ' से ऐसा दुरूह मार्ग तय किया, तब शायद उसे भी पता नहीं था कि उसका ऐसा असंभव-सा जान पड़ने वाला संकल्प प्रसिद्धि के इतने ऊँचे पठार पर पहुँचा देगा।

काश! कानों में पड़े 'मेरुखण्डीय' तान

प्रभु जोशी

आज उस्ताद अमीर ख़ाँ ने जो 'स्वर' लगाए थे, वे पूरी शताब्दी को पार करते हुए, उस छोर पर अपनी शुद्धता के साथ खड़े हैं, जहाँ पर आकर लग रहा है कि 'पश्चिम के पॉपुलर' ने हमारे 'शास्त्र' और 'लोक' दोनों का ही क्रूर ध्वंस कर दिया है। ऐसे समय में उस्ताद अमीर ख़ाँ को संस्थागत रूप से याद किया जाना बहुत महत्वपूर्ण है। उस्ताद अमीर ख़ाँ यों तो इंदौर के ही थे, लेकिन उन्हें अपनी इस मालवा की मिट्टी ने एक लंबे समय तक मिट्टी का ही माधो माना और उनकी मेधा की स्वीकृति और वैसा स्वागत नहीं किया, जैसा कि अन्यों का। मुझे याद नहीं पड़ता 'राज्य' ने भी उनकी स्मृति के लिए कोई अतिरिक्त रुचि दिखाई हो। न उनके नाम पर कोई पुरस्कार, सम्मान या फैलोशिप है और न ही कोई छोटी-मोटी 'सांस्थानिकता' जो पद्मभूषण से सम्मानित कलाकार के लिए हो सकती थी। कभी-कभी सालाना एक औपचारिक आयोजन बिना किसी किस्म की उपस्थिति दर्ज कराए समाप्त हो जाता है, लेकिन शताब्दी-वर्षारंभ पर राज्य की उस्ताद 'अलाउद्दीन ख़ाँ संगीत अकादमी' यदि उन्हें समारोहात्मक ढंग से याद करने के लिए 'अमीर ख़ाँ' प्रसंग रख रही है, यह अच्छी बात है और यह एक तरह से पिछले का 'प्रक्षालन' भी है।

उस्ताद अमीर ख़ाँ साहब ने स्वयं को एक गायक की तरह स्थापित करने के लिए शास्त्रीय संगीत की निष्करुण दुनिया में एक लंबा संघर्ष किया। दुर्भाग्यवश, जब वे पहले-पहल मिर्ज़ापुर की एक संगीत सभा में प्रस्तुति देने उतरे तो लोगों ने उन्हें शोरगुल करके मंच से उतरने को बाध्य कर दिया। दरअसल, तब उस सभा में उस्ताद इनायत ख़ाँ, अंजनीबाई माळपेकर थे। संगीत-रसिक उनके दीवाने थे। नतीजतन एक युवा प्रयोगधर्मी गायक को सुनने के लिए ज़रूरी धैर्य उनमें नहीं था। लेकिन इस घटना ने युवा अमीर ख़ाँ को भीतर से बहुत उद्विग्न कर दिया। वे रायगढ़ दरबार के गायक बने रहने का मोह छोड़ इंदौर लौट आए। यह घर वापसी थी, जहाँ उनकी पुश्तैनी परंपरा और सारंगी वादन का इल्म इंतज़ार कर रहा था। लेकिन अमीर ख़ाँ साहब ने गायन को ही अपना अभीष्ट मानकर अपने 'रचनात्मक एकांत' में स्वयं को एकाग्र करना शुरू कर दिया।

यह अमीर ख़ाँ के भाग्य का ही संयोग था कि उनके घर में 'किराना घराना' के महान गायकों की आवाज़ाही थी। देवास से उस्ताद बाबू ख़ाँ बीनकार, उस्ताद रजब अली ख़ाँ साहब आते थे और देर रात तक गाना-बजाना होता। संगीत को लेकर गहरी बातें होतीं। इसके अतिरिक्त ख़ाँ साहब का पुष्टिमार्ग के वल्लभ संप्रदायी संगीत से संबद्ध लोगों के बीच बचपन से ही आना-जाना था। गोस्वामी गोकुलोत्सव महाराज ने तो एक बार बताया भी था कि ख़ाँ साहब बाल्यावस्था से सत्रह वर्ष की तरह उनके यहाँ आते-जाते थे। 'मेरुखण्ड' की गायकी की परंपरा उनके यहाँ पहले से ही थी। बहरहाल, ख़ाँ साहब के पास उस्ताद छज्जू ख़ाँ, नज्जू ख़ाँ की मेरुखण्ड गायकी परंपरा का पर्याप्त ज्ञान भी था। उस्ताद मुराद ख़ाँ के बीन वादन की 'आलापचारी' से वे गहरी आसक्ति भी रखते थे, क्योंकि उसमें अति विलम्बित लय का जो बारीक काम था, वह उन्हें आकर्षित भी करता था। कुल मिलाकर अमीर ख़ाँ को 'नवाचारी मेधा' के लिए अब अपनी गायकी के मार्ग को आविष्कृत करने का एक बहुत दृढ़ और सुस्पष्ट मार्ग खुल चुका था। उन्होंने 'मेरुखंड' की तानों को तो इस तरह और इतना आत्मस्थ कर लिया था कि उनके शिष्यों का कहना है कि उन्हें लगभग पाँच हज़ार तानें याद थीं और इसकी वजह यह थी कि उन्होंने 'रियाज' को अपने 'प्रतिपल' का पर्याय बना लिया था। मुझे याद है उनके शिष्य गायक रमेश नाडकर्णी का कहना था कि मौन में भी काँपता रहता था उनका कंठ। जैसे एक अंतरात्मा का कोई स्पेस है, जहाँ उनकी निरंतर 'रियाज़' चलती रहती है।

शताब्दी पुरुष

उस्ताद अमीर ख़ाँ

कुल मिलाकर उनकी गायकी में बीनकारी से ली गई अविलम्बित लय, उस्ताद अमानत अली ख़ाँ की तानें और उस्ताद वाहिद ख़ाँ,

जिन्हें बहरे वहीद ख़ाँ साहब भी कहा जाता है, की ख़ासियत और ख़सूसियतों को आत्मसात किया गया जिसमें 'मेरुखण्डीय' तानों के अप्रतिम अभ्यास ने भी योगदान किया। हाँ, उन्होंने 'तराना' को अपनी सांगीतिक मेधा से एकदम से ऐसा रूप दिया कि वह आध्यात्मिकता से नापा जा सका। उसमें उन्होंने अंतरे में सूफ़ी संत अमीर ख़ुसरो की रुबाइयों का बहुत ही प्रीतिकर प्रयोग किया जिसकी सराहना पूरे संगीत-संसार में हुई। इसके बाद जब वे इंदौर छोड़कर कोलकाता पहुँचे तो उन्हें हाथोंहाथ लिया गया। उनके एचएमवी ने रिकॉर्ड बनाए और आकाशवाणी केंद्रों पर उनकी गहरी पाटदार आवाज चौतरफ़ा गूँजने लगी। उन्हें सन् 59 में देश की केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी ने सम्मानित किया व 70 का दशक पूरा होते-होते 'पदमभूषण' सम्मान से उन्हें नवाज़ दिया। लेकिन वे पुरस्कारों से निस्पृह रह अपनी आध्यात्मिकता में डूबे गायन में ही साँस लेते रहते थे।

उस्ताद अमीर ख़ाँ साहब का व्यक्तिगत जीवन आमतौर पर और वैवाहिक जीवन ख़ासतौर पर विषादमय रहा। उन्होंने पहली शादी ख्यात सितारवादक उस्ताद विलायत ख़ाँ की बहन से की थी, जल्दी ही उससे विलग होने की स्थिति बन गई। उनसे जिनका कि नाम ज़ीनत था, फरीदा नाम की बेटी भी है। दूसरा विवाह मुन्नीबाई से हुआ, लेकिन शायद वे एक गायक के जीवन और उसके मानस को समझ नहीं पा रही थीं, नतीजतन जल्द ही वह विवाह भी टूट गया। उनका अंतिम वैवाहिक जीवन आगरे की ठुमरी गायिका मुश्तरी बेग़म की बेटी रईसा से हुआ जिनसे एक पुत्र है, जो शाहनवाज के नाम से टीपू सुल्तान सीरियल में हैदर अली की भूमिका के लिए देश में जाना गया। कोलकाता में जबकि वे जीवन के उत्तरार्द्ध पर लेकिन अपनी रचनात्मकता तथा प्रसिद्धि के शिखर पर थे, एक कार एक्सीडेंट में इस संसार से विदा हो गए। दरअसल, कोलकाता उनकी इच्छा का शहर नहीं था। वे अपने जीवन के आखिरी वर्षों में अन्नपूर्णा मंदिर रोड की दरगाह के नज़दीक कहीं अपना घर बनवाना चाहते थे, लेकिन एक रचनात्मक ज्वार से उफनते गायक ने 'घराना' तो बना दिया, लेकिन घर बनाने का स्वप्न अधूरा ही रह गया। वे बार-बार इंदौर लौटकर आते थे और भूतेश्वर मंदिर में अपनी 'हाज़िरी' लगाना नहीं भूलते थे। वे कहा करते थे 'मेरे पास जो कुछ है और जो मुझे दिया है वह इन्हीं भूतेश्वर की देन है।' लेकिन, हम आज सोचते हैं कि इंदौर ने और उन्हें उनके राज्य ने क्या दिया? क्या यह बात उदास करने वाली नहीं है कि शताब्दी के इस छोर पर उन्हें 'स्मरण' का सरकारी कर्मकांड पूरा करने के बाद निश्चय ही फिर से विस्मृति के उसी धूसर और फटे कपड़े में लपेटकर रख दिया जाएगा। क्या ऐसा संभव होगा कि इंदौर और उस्ताद अमीर ख़ाँ को और उनकी गायकी के प्रति आसक्ति और सम्मान रखने वाले उन्हें विस्मृति के गर्त से बाहर लाएँ। इतिहास में ऐसा भी हुआ है, जब व्यवस्था और सत्ता ने जिन्हें क़ब्रों में दफ़ना दिया था, अवाम ने क़ब्रों को उखाड़कर मालाएँ चढ़ाई हैं। काश! ऐसा हो कि रोज़-रोज़ देश में चौराहों पर लगते नेताओं के बुतों से एक अलग और ऊँचा बुत सदी के इस महान गायक का इंदौर में कहीं लगे और जिसके निकट गुजरते हुए, हमारे कानों में मेरुखंड की कोई तान गूँज उठे।

उस्ताद का गायन

एक असमाप्त सभा

सुशोभित सक्तावत

मैहर घराने के सितार वादक पं. निखिल बैनर्जी उस घटना को ताउम्र नहीं भूले। 1950 के दशक का उत्तरार्द्ध रहा होगा। वे एक संगीत सभा में अपने अग्रज गुरुभाई पं. रविशंकर का सितार वादन सुनकर लौट रहे थे कि तभी हवा में तैरती एक आवाज सुनकर ठिठक गए। एक अनसुना-सा राग और एक अप्रतिम गहन-गंभीर स्वर। कुछ ऐसा ही, जिसे कीट्स ने 'फुल थ्रोटेड ईज' कहा है। वे सभा में लौट आए। वह कर्नाटकी संगीत का राग अभोगी कानड़ा था, जिसे किराना घराने के उस्ताद अब्दुल करीम ख़ां ने हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में प्रचलित कर दिया था। और गाने वाले थे अब्दुल करीम ख़ाँ साहब के उत्तर-स्वर उस्ताद अमीर ख़ाँ।

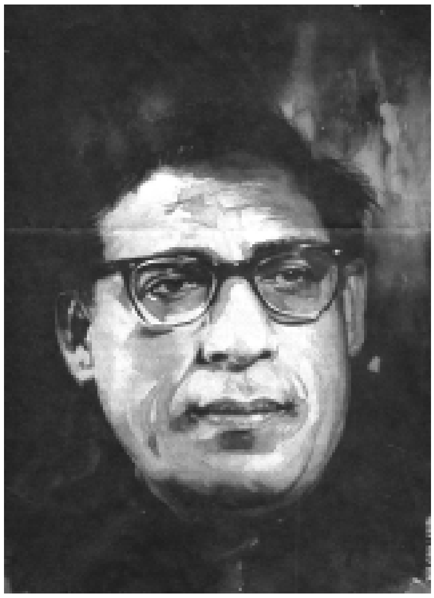

उस्ताद अमीर ख़ाँ का गाना सुनकर ठिठक जाने वाले पं. निखिल बैनर्जी अकेले नहीं थे। वे उस सम्मोहन के अकेले साझेदार नहीं थे। उस्ताद अमीर ख़ाँ के स्वर की राग-दीप्ति ही कुछ ऐसी है। उन्हें सुनते हुए हमेशा मन में एक दीर्घ व्यक्तित्व की छवि बनती है। उन्हें सुनते हुए हमेशा पहाड़ याद आते हैं। वे सुरों के सुमेरु हैं। मेरुखंड गायकी की मेखला के विराट धारक।

इंदौर एक शहर नहीं घराना : उत्तरप्रदेश का किराना और मध्यप्रदेश का इंदौर। भूगोल कहता है कि इन दो जगहों के बीच सैकड़ों मील की दूरी है, लेकिन संगीत की दुनिया में ये दो जगहें नहीं, एक-दूसरे से परस्पर अंतःक्रिया करते दो शुद्ध स्वर हैं। षड्ज और पंचम। एक वादी, दूसरा सम्वादी। किराना में ही उस्ताद अब्दुल करीम ख़ाँ जन्मे, यहीं उस्ताद वहीद ख़ाँ ने सुर साधा और यहीं किराना घराने की जगविख्यात ख़याल गायकी का ठाठ जमा। कोमल स्वराघात और धीमी बढ़त का भद्र सौंदर्यपरक गायन। यूं तो उस्ताद अमीर ख़ाँ इंदौर घराने के हैं, लेकिन किराना घराने वाले उन्हें अपना मानते हैं।

अलबत्ता अमीरख़ानी गायकी का सम्मोहन किसी एक स्वर वैशिष्ट्य से निर्मित नहीं हुआ था। उसमें उस्ताद अब्दुल वहीद ख़ाँ सरीखी विलंबित लय है, उस्ताद रजब अली ख़ाँ सरीखी तानें हैं और उस्ताद अमान अली ख़ाँ सरीखी मेरुखंड शैली है। बंबई के भिंडीबाज़ार घराने के अमान अली ख़ाँ का गाना अमीर ख़ाँ ने उनके घर के बाहर खड़े होकर सुन-सुनकर

सीखा था। इन अर्थों में वे संगीत की श्रुति परंपरा के भी संवाहक हैं।

हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन के स्थापत्य और सौंदर्यशास्त्र के बारे में बार करते समय यह याद रखना चाहिए कि यह संगीत उस आदिम संसार से आता है, जो कंठ की कंदराओं में बसा है। अर्थध्वनियाँ उसके सिंहद्वार पर ठिठकी रहती हैं। हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन अनहद का आलाप है, जो समूचे अस्तित्व के मंद्रसप्तक से उठकर आता है। गायन में सम पर आमद किसी प्रतिक्रमण से कम नहीं, षड्ज पर विराम परिनिर्वाण से कम नहीं और अमीर ख़ाँ की गायकी में ये तत्व पूरी धज के साथ मौजूद हैं।

उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ाँ अगर ठुमरी के सम्राट थे तो अमीर ख़ाँ ख़याल के सिरमौर। बड़े ख़ाँ साहब का गायन अगर संबोधन था तो अमीर ख़ाँ साहब का गायन आत्ममंथन। ये दोनों मिलकर हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन के शीर्ष राग-द्वैत का निर्माण करते हैं। विपर्यय किन्तु परस्पर।

यदि कलागत सौंदर्य साक्षात की तात्कालिक संभावना है तो कह सकते हैं कि संगीत इसका सबसे बड़ा प्रतिमान है। यही वह चीज़ है, जो सदियों से इंसान की रुह को रूई की मानिंद धुनती चली आ रही है। अमीर ख़ाँ का मालकौंस या तोड़ी सुनें तो समझ आ जाएगा कि एक असंभव आह्लाद की दहलीज़ पर खड़े होने के क्या मायने हैं। यह गायन देशकाल के मिथक को तोड़ता है। वह तमाम ज़मानों और इलाकों के परे है। उसमें कायनात की विलंबित नब्ज़ है और गहन दार्शनिक चिंतन है।

कह सकते हैं कि उस्ताद की आवाज़ ने हमारे जीवन को एक असमाप्त सभा बना दिया है और हम उसमें कोमल गांधार की तरह ठिठके हुए हैं।

निष्कलंक हृदय, माथे पर तिलक, सदैव श्वेत वस्त्रधारी मालवीय जी अत्यन्त मधुर सम्मोहक प्रभावोत्पादक, अकाट्य वाणी के धनी मालवीय जी, सच्चे धर्मों में भारतीय हिन्दू संस्कृति के आदर्श प्रतीक थे। वे हिन्दू संस्कृति को उच्चतम मानवीय संस्कृति मानते थे व इसकी सुरक्षा के लिए आजीवन कटिबद्ध भी रहे। इसीलिये आपने काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना की। शिक्षा व भिक्षा के अप्रतिम पुजारी मालवीय जी को, सारे संसार ने भिक्षुराज की उपाधि से विभूषित कर भिक्षावृत्ति को सर आँखों पर बैठाया। ''गाँधीजी कहा करते थे- ''भीख माँगना मैंने अपने बड़े भाई मदन मोहन मालवीय से सीखा है।'' आपके असाधारण, विलक्षण गुणों के कारण 'महामना' संबोधन प्राप्त हुआ।

25 दिसम्बर 1861 कृष्णअष्टमी के दिन, प्रयागराज में निर्धन किन्तु विद्वान पंडित ब्रजनाथ के घर आपका जन्म हुआ। आपके पूर्वज मालवा के रहने वाले थे, अतः मालवीय कहलाये। व्यायाम के शौकीन, नटखट, गुल्ली-डंडा खेलने वाले मालवीय जी बचपन से ही कवि हृदय, सितार एवं बांसुरी बजाने में निपुण थे। बचपन से ही मदनमोहन जी की कृष्णअष्टमी के दिन, सजायी झाँकी देखने वालों का मेला लगा रहता था।

महान स्वप्नद्रष्टा

शताब्दी पुरुष

पं. मदनमोहन मालवीय

आभा भारती

'भिक्षुराज' मालवीय जी की, भिक्षा माँगने की अभूतपूर्व शुरुआत हुई थी। अभूतपूर्व इसलिए कि मात्र आठ वर्ष की आयु में पिता से गायत्री मंत्र से दीक्षित, कौपीन पहने, पलाशदण्ड हाथ में लिए, कन्धे पर मृगछाल और हाथ में झोली लेकर मदनमोहन जब अपनी माँ मोना देवी के सामने जाकर बोले- ''भवति भिक्षामं देहि'' तो पुत्र का भिक्षुरूप देख, घर की घोर गरीबी के चलते माँ से आँसुओं का आवेग न रोका गया। बेटे को छाती से लगाकर वह फफक पड़ीं। अविरल बहते अश्रुओं से मदनमोहन के मस्तक का अभिषेक करती रही। आशीर्वाद रूपी इन आँसुओं ने मालवीय जी की झोली आजीवन खाली नहीं होने दी।

इस राशि से मालवीय जी देश सेवा के नये-नये कीर्तिमान स्थापित करते चले गये। इस विशाल राशि में से एक कानी कौड़ी कभी भी आपने अपने ऊपर खर्च नहीं की। भिक्षा में मिले समस्त दान को जन-जन के कल्याण के लिए देश सेवा के लिए दान कर दिया। एक, दो, तीन, नहीं सहस्त्रों संस्थाओं के जन्मदाता मालवीय जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना करके तो जीते जागते किवदन्ती ही बन गये थे। ब्राह्मण याचक की झोली से निकले शुद्ध पवित्र दान से निर्मित यह विश्वविद्यालय तो स्वयं एक चमत्कार है। विश्व के श्रेष्ठतम विश्वविद्यालयों में से एक। विश्व की बहुमूल्य सम्पत्ति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तो आपकी वह धवल गगन चुम्बी कीर्ति है, जिसे प्राप्त करने का सौभाग्य 'न भूतो न भविष्यति' कहा जायेगा। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने एक सटीक कविता लिखी थी :

भारत को अभिमान तुम्हारा, तुम भारत के अभिमानी।
पूज्य पुरोहित थे हम सबके, रहे सदैव समाधानी।
तुम्हें कुशल याचक कहते हैं किन्तु कौन तुमसा दानी।
अक्षय भिक्षा-सत्र तुम्हारा, हे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी।
स्वयं मदन मोहन की तुममें, तन्मयता है समा गयी।
कल्याणी वाणी जन-जन के, हित में धुनी रमा गयी।

यह शिक्षा केन्द्र भारतीय लोगों को आदर्श मानव बनाने का श्रेष्ठ साधन था, जिसकी सिद्धि के लिए आपने अपना समस्त जीवन लगा दिया। आपकी इच्छा थी कि, इस विश्वविद्यालय का स्नातक बनने को सारा विश्व लालायित रहे, जो देश में तक्षशिला एवं नालन्दा विश्वविद्यालय के अभाव को दूर कर सके। इसी महात्वाकांक्षा के चलते आप तब तक भोजन नहीं करते जब तक कि विश्वविद्यालय के लिए कुछ सहायता प्राप्त न कर लेते थे। यह नियम अन्त तक चलता रहा और तभी टूटा जब वे सर्वथा असमर्थ हो गये।

मुझे गर्व है कि, ऐसे सुन्दर विचारों से सिंचित शिक्षा का विशाल केन्द्र मेरी जन्मभूमि है। मुझे इस बात का भी गर्व है कि मेरा बचपन मालवीय भवन के घर, आँगन, बगीचे में अठखेलियाँ करते हुए बीता और पूरी शिक्षा इसी केन्द्र में हुई। मेरे जीवन के आदर्श यहाँ ढले हैं, संस्कारों ने रूपरेखा पाई है। भारत का इतिहास साक्षी है कि, इस विश्वविद्यालय ने असंख्य विद्यार्थियों को सुन्दर, सुदृढ़ चरित्र से गढ़कर, स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए तैयार किया। मानसिक व शारीरिक रूप से एक नहीं ऐसे सैकड़ों नाम हैं, जो भारतीय आकाश को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम से रौशन कर रहे हैं।

मालवीय जी के हिन्दू विश्वविद्यालय के स्वप्न ने किस प्रकार साकार रूप ग्रहण किया इसकी कहानी बहुत लम्बी है। परमात्मा और उसकी प्रार्थना में अटूट विश्वास रखकर मालवीय जी ने उत्साह पूर्वक अमीर-गरीब, राजा-रंक सभी से, सारे देश में घूम-घूम कर भिक्षा मांगी। एक करोड़ रुपये एकत्र करके जादूगर की भाँति खेतों और मैदानों के ऊपर विश्वविद्यालय की इमारतें खड़ी कर दीं। इसे विश्वनाथ की कृपा बताते हुए मालवीय जी ने कहा- ''मैंने श्री विश्वनाथ से प्रार्थना की थी कि, वह मुझे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में दर्शन दें। परमात्मा कृपालु था, उसकी कृपा से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। एक महात्मा ने मुझे एक सौ रुपये दिये और प्रार्थना की कि, वे एक करोड़ एक हो जायें और वे चले गये। दस वर्ष के अल्प समय में असम्भावित दिखाई देने वाली बात पूर्ण हो गयी। 4 फरवरी 1916 की बसन्त पंचमी का दिन भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इस दिन वाइसराय लार्ड हार्डिंग ने विश्वविद्यालय का शिलान्यास गवर्नरों, नरेशों, महात्मा गाँधी व अन्य नेताओं तथा मनीषियों की उपस्थिति में किया। कहते हैं गंगा तट पर ऐसा विराट अभूतपूर्व रंगारंग गरिमामय समारोह ब्रिटिश भारत में कभी नहीं हुआ था।

मुझे आज भी काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय का विद्यार्थी जीवन बखूबी याद है। बसंत पंचमी का दिन जैसे-जैसे नजदीक आता जाता, चौतरफा उमंग, उत्साह के माहौल से अपने आप विश्वविद्यालय आच्छादित होता जाता। यह दिन सभी छात्र-छात्राओं के दिल-दिमाग में नूतन स्फूर्ति का संचार कर, सभी को हर्षोल्लास के साथ अपनी ऐतिहासिक गरिमा में पिरो लेता था। सभी को पीले वस्त्र पहनना आवश्यक होता था। प्रत्येक हॉस्टल में एक सप्ताह पूर्व से ही, पीला रंग बंटने लगता था, कपड़े रंगने हेतु। एक-दो दिन पूर्व से ही अपने-अपने कॉलेज, हॉस्टेल में झाँकी सजने, सजाने की भूमिका बंधने लगती थी। ये झाँकियाँ जीवन्त होती थीं, क्योंकि इनमें छात्र-छात्राएँ स्वयं सजधज कर नृत्यरत होते थे। ये झाँकियाँ विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता का अपूर्व अद्भुत नमूना होती थीं। बसंत पंचमी के

4 फरवरी 1916 की बसन्त पंचमी का दिन भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। इस दिन वाइसराय लार्ड हार्डिंग ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास गवर्नरों, नरेशों, महात्मा गाँधी व अन्य नेताओं तथा मनीषियों की उपस्थिति में किया। कहते हैं गंगा तट पर ऐसा विराट अभूतपूर्व रंगारंग गरिमामय समारोह ब्रिटिश भारत में कभी नहीं हुआ था।

धर्म और संस्कृति के प्रयाग तीर्थ पर महामना पं. मदन मोहन मालवीय की अनमोल देन- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आज भी याद है

अमृत पर्व

5 जनवरी, 1937 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रांगण में महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी का 75 वाँ जयन्ती समारोह धूम-धाम से मनाया गया था। इस अवसर पर पंडित जी को एक जीवनचरित्र ग्रन्थ और एक सुन्दर देशी घड़ी जिस पर भारतमाता की मूर्ति बनी थी, भेंट की गयी।

मालवीय जी ने इस प्रकार अपने उद्गार व्यक्त किये- ''जिस प्रेम और उत्साह से आप लोगों ने उत्सव मनाया है, उसे देखकर मैं मूक हो रहा हूँ। अपने भावों को मैं शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता। मैं भगवान विश्वनाथ से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे और आयु दें। देश की दशा बहुत बुरी हो गयी है। दुख के इस उमड़ते समुद्र में क्या मुझे मरने की फ़ुरसत है? मेरा 10 वर्षों का कार्यक्रम है जिसे मैं इसी शरीर से पूरा करना चाहता हूँ। अभी यहाँ विश्वनाथ का मंदिर बनना शेष है। मंदिर तो विश्वविद्यालय के हृदय के समान है जब हृदय ही नहीं होगा तो शरीर किस काम का? सहस्त्रों वर्ष पूर्व जब यूरोप में संस्कृति का नामोनिशान नहीं था तब हमारे यहाँ सभ्यता का सूर्य उन्नति पर था। यहाँ की संस्कृति बड़ी प्रबल थी। इस संस्कृति की रक्षा करना हम लोगों का परम उद्देश्य होना चाहिए। इस विश्वविद्यालय को ऐसा केन्द्र बनाओ जो सरस्वती को समझे और उसकी रक्षा का उपाय करे। ऐसे एक नहीं सौ विश्वविद्यालय भी हों तो थोड़े हैं, लेकिन कम से कम एक तो हो।

दुर्लभ छवि : राष्ट्रपिता के साथ मालवीय जी

दिन सभी जुलूस बनाकर अपने-अपने कॉलेज के सम्मुख, उस विशाल जुलूस में सम्मिलित होने खड़े होते थे, जो विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करता हुआ मुख्य द्वार से बाहर, गाजे-बाजे पर थिरकते कुलगीत- मधुर-मनोहर अतीव सुन्दर ये सर्वविद्या की राजधानी, ये तीन लोकों से न्यारी काशी, सुज्ञान, सत्य और धर्मराशि, गाते युवक-युवतियाँ गंगा के किनारे वहाँ पहुँचते थे, जहाँ शिलान्यास हुआ था। जहाँ मालवीय जी के पावन मन का अनन्त आसमाँ आज भी समाया हुआ है। गंगा का विशाल तट भी कम पड़ता है उनके अरमानों को संजोने। विश्वविद्यालय के कुलपति सहित सभी प्रोफेसर (शिक्षक-शिक्षिकाएँ) भी अनिवार्य रूप से उस जुलूस में उपस्थित होते थे। वैदिक मंत्रोचार के साथ, सरस्वती पूजन पश्चात् प्रसाद वितरण व नाश्ता करते हुए, पुनः पूर्ववत् उल्लास संग विद्यार्थीगण नाचते-गाते लौटते थे। दिनभर न केवल मालवीय भवन में नाना प्रतियोगिताएँ आयोजित होती थीं वरन् प्रत्येक छात्रावास भी अपनी सर्वोमुखी प्रतिभा प्रदर्शन को व्याकुल रहता था।

आज दमोह जैसे छोटे शहर में रहते हुए, मैं पैंतीस वर्षों पश्चात् भी, जीवन की गोधूलि बेला में बसंत पंचमी आते ही रोमांचित होने लगती हूँ। सालभर प्रतीक्षारत् पीली साड़ी नहा-धोकर पहन, मन ही मन, सरस्वती पूजन करके, लग जाती हूँ दैनिक कर्मों में, कर्मवीर मालवीय जी को सच्ची श्रद्धांजलि देने।

सखी-सहेलियों की क्षणिक याद ही मन को अनुराग-रंजित कर जाती है कि, जवानी को पार कर बचपन की ड्योढ़ी पर लौटा तो मन। याद आता है मालवीय भवन का घर आँगन, फलों से लदा बगीचा, फिसल पट्टी, झूले और माली भी। जामुन, आम, अमरूद, इमली, कमरक, कदम्ब, बेर, बेल और शहतूत से तृप्त होती साँसें, झूला झूल-झूल हवा से बातें, फिसल पट्टी पर फिसल-फिसल गिरकर उठने के हौसले.... हौसले पर हौसले। अनगिनत हौसले मिले वहीं से, जो जीवन भर काम आये। आज भी आ रहे हैं, आंधी तूफानों से बातें कर रहे हैं। हाँ, माली भी स्मृति पटल पर आज जीवन्त उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं, जो हम शरारती बच्चों को कभी नहीं डाँटते-फटकारते थे। वरन् फल तोड़ने में सहयोग करके, उन्होंने हम बच्चों के सहज विकास को चहुँमुखी गरिमा और आभा प्रदान की। उनके ऋण के अहसास से परिपूर्ण है मन। सारे वृक्ष, रास्ते, हँसते-खेलते, गाते, हौसले बुलंद करते विद्यार्थी और नींव के पत्थर भी बहुत शिद्दत से प्रत्येक बसंत पंचमी को याद आते हैं। यही बहुत है ज़िन्दगी को पुनः रचने, संवारने और अपने-अपने घर-परिवार पड़ोस को संस्कारित करने के लिए। नींव के पत्थरों को प्रणाम। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के स्वप्नद्रष्टा को प्रणाम! उनकी भिक्षावृत्ति को प्रणाम और उनके समस्त सहयोगियों को भी प्रणाम।

इस बार बसंत पंचमी को मैं भोपाल के मालवीय भवन में थी। बी.एच.यू. के समस्त पुराने गौरवशाली, प्रतिभा सम्पन्न मालवीय जी के संस्कारों, विचारों, आदर्शों से सिंचित पुराने विद्यार्थियों के मध्य। आज सभी गरिमामय पदों पर हैं। प्रदेश के महामहिम गवर्नर, पूर्व डी.जी.पी., पूर्व वाइस चांसलर डी.पी. सिंह और भी अनेक विभूतियों के मध्य स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रही थी। पूरे देश में ही नहीं विश्वभर में महामना मालवीय जी की 150वीं जयन्ती को यादगार आयोजन में तब्दील किया जा रहा है। यही वह अवसर है जब एक फिर भारतीय मनीषा और शिक्षा के प्रकांड शिल्पी को सही अर्थों में याद करने का प्रयोजन नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा बन सकेगा।

स्मृति शेष

संपूर्ण रंगकर्मी थे सत्यदेव दुबे

रवींद्र त्रिपाठी

आजकल किसी के निधन पर ये कहना कि उसके जाने से अपूरणीय क्षति हुई है, एक 'क्लिशे' बन चुका है। इसके बावजूद सत्यदेव दुबे के निधन के बाद यही कहना पड़ेगा कि उनके जाने के बाद भारतीय और हिन्दी रंगमंच को ऐसी क्षति हुई है जिसकी भरपाई मुश्किल है। दुबे के बारे में कई किस्से प्रचलित हैं। कुछ सच्चे, कुछ झूठे और कुछ अतिरंजित। शायद समकालीन रंगमंच में कोई दूसरा ऐसा शख्स नहीं, जिसके बारे में इतने किस्से सुनाए या कहे जाते हों। मुंबई से लेकर सुदूर दक्षिण तक में दुबे के चाहने वाले हैं। उनके बारे में कहे या सुनाए जाने वाले सारे किस्से यदि इकट्ठे किए जाएँ तो एक मोटी किताब बन सकती है। लेकिन ये किस्से सिर्फ मनोरंजक ही नहीं हैं। उनमें अभिनय और नाटक संबंधी कई गुरु गंभीर अंतर्दृष्टियाँ भी मौजूद हैं।

दुबे में अहम था, गुरुडम था, मस्ती थी, जोखिम लेने की काबिलियत थी और अलोकप्रिय होने की जन्मजात प्रतिभा के साथ अपने सहयोगियों का दिल जीतने की ज़बर्दस्त क्षमता। कई साल पहले जब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के रंगमंडल के साथ वे 'इंशाअल्ला' करने दिल्ली आए थे, मैंने उनका इंटरव्यू लेने की इच्छा प्रकट की। सुनते ही वे बोले- 'कितने पैसे दोगे।' स्वाभाविक था, बात टूट गई। वे अपनी राह और मैं अपनी राह। शाम को संयोग से रामगोपाल बजाज के साथ मैं मंडी हाउस इलाके में रह रहे संगीतकार-लेखक दंपति सुरिंदर सिंह और पद्मा सचदेव के यहाँ पहुंचा। दुबे भी वहाँ थे। बातचीत में मालूम हुआ वे पद्माजी को माता जी कहते थे। उसी क्रम में उन्होंने कहा कि हिन्दी में स्पीच पढ़ाने के लिए अच्छे और लंबे वाक्य नहीं मिलते। इस पर मुझे आचार्य रामचंद्र शुक्ल की लिखी कुछ पंक्तियाँ याद आईं। मैंने उन्हें सुनाईं तो वे तुरंत बोले कि मुझे लिखकर दे दो। मैंने सहर्ष उन्हें लिखकर दे दिया। बाद में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में मिलने पर उन्होंने मुझे धन्यवाद दिया और चाय भी पिलाई।

दुबे महान शिक्षक थे। वह स्पीच सिखाने में काफी दक्ष थे। अरसे तक वे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्रों को स्पीच सिखाते रहे। मुझे याद है कि एक बार राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्रों को स्पीच सिखाते हुए अभिनय के बारे में गुरुमंत्र देते हुए उन्होंने कहा था (ऐसा बाद में एक छात्र ने बताया था)- 'बेटे, क्लिशे करना सीखो, क्लिशे! अमिताभ बच्चन क्लिशे करता है इसलिए सफल रहा, नसीरुद्दीन शाह क्लिशे नहीं कर पाता है इसलिए अच्छा अभिनेता होते हुए फिल्मी दुनिया में स्टार नहीं बन सका। दुबे के कई छात्र फिल्मों में काफी सफल रहे। जैसे अमरीश पुरी और अमोल पालेकर। उनके कई शिष्य मुंबई के रंगमंच पर सक्रिय हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व छात्र और आजकल वहाँ अधिकारी बीएस पाटिल जब मुंबई में उनसे मिलने गए तो दुबे ने फोन पर कहा कि फ्लैट पर आने के पहले नीचे से फोन करना। पाटिल ने फोन किया तो दुबे ने कहा- मेरे लिए लस्सी लेते आओ और ख़ुद जो पीना हो, कोक या लिम्का- वो भी लेते आओ।' ज़ाहिर था कि वे औपचारिक नहीं थे। एक बार वे गिरीश कर्नाड की फिल्म में काम कर रहे थे। रात में तीन बजे उनके यहाँ जा पहुंचे। उन्होंने घर की घंटी बजाई और दरवाजा खुलने पर गिरीश से कहा- तुमने मुझे मेरे रोल के बारे में कुछ नहीं बताया, मैं कैसे एक्टिंग करूंगा।'

दुबे की सबसे बड़ी खूबी थी कि उन्होंने उस मुंबई में हिन्दी रंगमंच का डंका बजाया जो उस समय हाशिए पर था। तब मुंबई में अंग्रेजी नाटकों की धूम थी। 'अंधा युग' को लोकप्रिय नाटक में ढालने का श्रेय दुबे को ही है। न सिर्फ उन्होंने इसे निर्देशित किया बल्कि कइयों को उसे मंचित करने के लिए भी प्रेरित किया। हालांकि रंगमंच की आरंभिक शिक्षा उन्होंने इब्राहीम अलकाज़ी से ली थी मगर यह भी कहा जाता है कि अलकाज़ी को 'अंधा युग' के प्रति उत्सुक बनाने का काम उन्होंने ही किया। बहरहाल, मुंबई में आधुनिक हिन्दी रंगमंच को जमाने और फैलाने में सत्यदेव दुबे की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

बिलासपुर में जन्मे दुबे क्रिकेटर बनने मुंबई गए थे पर बन गए कलाकार। उन्होंने फिल्मों में अभिनय किया और पटकथाएँ भी लिखीं। पर उनकी मूल निष्ठा रंगमंच के लिए थी। वे एक संपूर्ण रंगकर्मी थे। उन्होंने कभी कोई नौकरी नहीं की और जिंदगी और रंगमंच को अपनी शर्तों पर किया और जीया।

अल्काज़ी के सम्पर्क ने बदल दी उनकी ज़िन्दगी

सत्यदेव अब्राहिम अल्काज़ी के प्रिय शिष्यों में से एक थे। अल्काज़ी जब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक बन कर दिल्ली शिफ्ट हो गए तब उनकी संस्था थियेटर यूनिट को सत्यदेव ने संचालित किया। छत्तीसगढ़ के बिलासपुर में वर्ष 1936 में जन्मे दुबे क्रिकेट खिलाड़ी बनने का सपना दिल में संजोये मुंबई आ गए थे लेकिन भारतीय रंगमंच के पितामह इब्राहिम अल्काज़ी के संपर्क में आने के बाद उनकी ज़िंदगी बदल गई। जब अल्काज़ी के बाद मुंबई में उनके रंगमंच की कमान दुबे के हाथों में आ गई। उन्होंने गिरीश कर्नाड के पहले नाटक 'ययाति' और 'हयवदन', बादल सरकार के 'इब्रांग इंद्रजीत' और 'पगला घोड़ा', मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' और विजय तेंदुलकर के 'ख़ामोश अदालत जारी है' जैसे नाटकों का मंचन कर भारतीय रंगमंच को जीवंत कर दिया। 'अंधा युग' की खोज सत्यदेव जी ने ही की थी। 1963 से 1985 तक का दौर उनकी सक्रियता का चरम था। सत्यदेव के साथ जो भी जुड़ा वह कुछ अलग ही हो गया। अमरीश पुरी की सिने जगत में स्थापना में सत्यदेव दुबे का बड़ा योगदान है। यह सत्यदेव का ही कमाल था कि उन्होंने राजेश खन्ना से थियेटर करवाया।

सत्यदेव दुबे अंग्रेजी के आदमी थे। अंग्रेजी से उन्होंने एम.ए. किया था लेकिन वे हिंदी रंगमंच से प्यार करते थे। इसीलिए वे हिन्दी रंगमंच की कमज़ोरियों पर उंगली रख देते थे। वे अक्सर कहते थे कि हिन्दी रंगमंच की सबसे बड़ी कमज़ोरी यही है कि इसमें अभी तक पेशेवराना अंदाज़ नहीं बन सका है। पेशेवर अभिनेता को यहां दोयम दर्जे का अभिनेता माना जाता है। मराठी अथवा बांग्ला रंगमंच पर प्रस्तुति, अभिनय और अभिनेता पूरी तरह प्रोफेशनल हो चुका है। दर्शक आत्मविश्वास के साथ इन भाषाओं के नाटकों को देखता है। हिन्दी रंगमंच उनके योगदान के लिए सदा याद रखेगा।

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व पुरुषों ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं किन्तु महिला छायाकार के रूप में होमई के अलावा अन्य नाम खोजा ही नहीं जा सकता है। आजादी के पूर्व से होमई अपना कैमरा लेकर मैदान में आ गयी थी।

भारत की पहली महिला प्रेस फोटोग्राफर

होमई व्यारावाला

कैमरे से दिल्लगी की अनूठी दास्तान

नवल जायसवाल

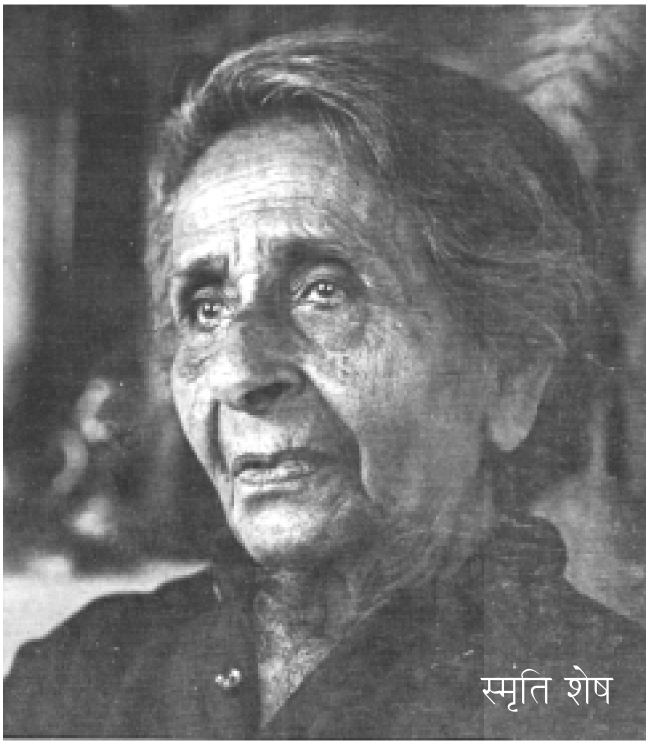

स्मृति शेष

हर इति के बाद एक आदि आरंभ होता है और इसी संदर्भ में मैं श्रीमती होमई व्यारावाला का नाम लेना चाहता हूँ। मेरे जन्म से भी तीस साल पूर्व में जन्मी होमई ने 1930 से फोटोग्राफी आरंभ कर दी थी। कैसी कल्पना और कैसा व्यवहार है, एक परिकल्पना को जन्म देने वाली गाथा है जिस पर एक सत्यपूर्ण चलचित्र की पटकथा लिखी जा सकती है। हमारे देश में कई सच्ची घटनाओं पर फिल्में बनी हैं, उपन्यास लिखे गये हैं, कई नाटकों की रचना की गई है, क्या होमई के बारे में ऐसा सोचा जा सकता है? भारत की स्वतंत्रता के पूर्व पुरुषों ने कीर्तिमान स्थापित किये हैं किन्तु महिला छायाकार के रूप में होमई के अलावा अन्य नाम खोजा ही नहीं जा सकता है। आजादी के पूर्व से होमई अपना कैमरा लेकर मैदान में आ गयी थी।

होमई के साथ मैंने दो वर्षों में कई घंटे बिताये हैं। उनका जीवन सरल नदी की तरह था। वे नवसारी गुजरात में पैदा हुईं। शिक्षा-दीक्षा मुम्बई में। पिताजी चित्रकार, नाटककार और लेखक थे। माता गृहिणी थीं। भले ही वे पारसी परिवार में पैदा हुयीं लेकिन सारे संस्कार एक भारतीय के थे। भारतीय परिवेश को अपनाना वे कभी नहीं भूली और यही कारण है कि सारे अवरोधों के बावजूद सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स में प्रवेश पा लेती हैं। सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स से पेंटिंग में डिप्लोमा करने के साथ ही बम्बई के सेंट जेवियर कॉलेज से बी.ए. पास किया। सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स से ही टीचर्स कोर्स का डिप्लोमा भी किया।

इसी दौरान एक पारसी युवक, जो उनका करीबी रिश्तेदार भी था, मानेकशा व्यारावाला से कॉलेज में भेंट होती है। मानेकशा उन दिनों फोटोग्राफी करने लगे थे और यहीं से शुरू होता है होमई का फोटोग्राफी का शौक जो बाद में व्यवसाय बन गया। होमई उन दिनों यह नहीं जानती थीं कि फोटोग्राफी एक व्यवसाय है या केवल कल्पना की मूर्ति। पूरक शब्द के माने वे नहीं जानती थीं और इस टर्निंग प्वाइंट ने उनसे बी.ए. की योग्यता, पेंटिंग की अभिरुचि सब छीन ली और एक पिकनिक में मानेकशा से कैमरा उधार मांग कर तस्वीरें खींची। बनायी गयी सब तस्वीरों में से एक तस्वीर तब 'बाम्बे क्रॉनिकल' में प्रकाशित हुयी और उसका पारिश्रमिक उन्हें उन दिनों सिर्फ एक रुपया मिला। मूल्य आप आंक सकते हैं। यहीं से होमई ने अपना जीवन प्रेस के लिये समर्पित कर दिया।

आरंभिक दिनों में होमई ने अपने कैमरे को बम्बई की जीवन शैली पर केन्द्रित किया। बम्बई के हर भाग को वे आत्मसात कर लेना चाहती थीं और वह सब उन्होंने कर दिखाया। यह सही है कि मानेकशा उनके लिये सब कुछ थे- गुरु, मार्गदर्शक, मित्र, साथी यानि सब कुछ। इस अवधि में उन्होंने कई कथायें छायांकित कीं, लिखी और वे सब प्रकाशित हुई। विषय पर काम करना और व्यवस्थित रूप से छायांकन करना उनका दैनिक कर्म था। यह अवधि पन्द्रह वर्ष की होती है और प्रथम वर्ष में ही दोनों ने शादी का मन बना लिया था किन्तु माता-पिता की सहमति

उनके लिये आवश्यक थी। अपने बड़ों के आशीष के बिना दोनों शादी नहीं करना चाहते थे और उनके प्यार को बड़ों का आशीष मिला पन्द्रह बरस बाद।

होमई का जीवन अनेक प्रकार के छायाचित्रों से गुंथा हुआ है। जब वे बम्बई में थीं। इलेस्ट्रेटेड वीकली के सम्पादक स्टेनले जैपसन उनके काम से बहुत प्रभावित हुये और उन्होंने अतिरिक्त रूप से असाइनमेंट देना आरंभ कर दिया। उन दिनों इस पत्रिका में छपना और वह भी सम्पादक के अनुरोध पर, उल्लेखनीय था। इस बीच दूसरा विश्व युद्ध आरंभ हो जाता है और वे भी इसके आसपास अपने कैमरे के साथ पाती हैं। यही वह समय था सन् 1941 में प्रणय यात्रा परिणय पर्व में बदल जाती है। 1942 में मानेकशा को दिल्ली जाना पड़ता है क्योंकि ईस्टर्न ब्यूरो ऑफ यूनाइटेड किंगडम का प्रचार कार्यालय सिंगापुर चला जाता है और दिल्ली जाकर वे इसकी स्थापना करते हैं। मानेकशा पत्नी होमई को दिल्ली आने के लिये कहते हैं किन्तु गर्भवती होने के कारण वह दिल्ली नहीं आ पाती हैं और बम्बई में ही रह जाती हैं। इस समय होमई ही ऐसी महिला छायाकार थीं जिन्हें युद्ध से संबंधित छायाचित्र भी लेने थे। उन्होंने बम्बई में रहकर अपना कार्य सुचारू रूप से पूरा किया।

14 एवं 15 अगस्त 1947 की रात सत्ता हस्तांतरण के चित्र, रात में 12 बजे लेने के बाद वे सुबह लालकिले पर पहुंच गयीं और ऐतिहासिक चित्र लिये। पुरुषों से कंधा से कंधा मिलाकर वे अपने आपको श्रेष्ठ साबित करती रहीं। राष्ट्रपति भवन से लेकर प्राइम मिनिस्टर हाऊस तक सारी गतिविधियों की वे साक्षी हैं।

दिल्ली आज़ादी की गवाह है। वह होमई को बुला रही थी। वे 1947 से पहले ही अपने छोटे से बेटे को लेकर दिल्ली आ गयीं। आजादी की तैयारियां चल रही थीं। कॉमनवेल्थ का सारा स्टॉफ भारत छोड़ रहा था। देश आज़ाद हुआ। ब्रिटिश हाइकमीशन अस्तित्व में आया। फार ईस्टर्न ब्यूरो की जगह ब्रिटिश इनफॉरमेशन ब्यूरो बनाया गया होमई ने इनके लिये काम किया और प्रेस जगत में अपना सिक्का और प्रभाव जमा लिया। यह अनुबंध 1967 तक चलता रहा। होमई ने इनके अलावा टाइम लाइफ, स्टेट्समेन, हिन्दुस्तान, टाइम्स, ऑनलुकर, करंट, जाम ए जमशेद, ब्लेक स्टार, पॉल पॉपर आदि संस्थाओं और पत्रों के अलावा अन्य संगठनों के लिये भी एक पत्रकार के रूप में काम किया।

इसी दौरान सरदार पटेल होमई को भारत सरकार के पब्लिसिटी डिपार्टमेंट में लेना चाहते थे किन्तु होमई ने स्वतंत्र रहना ही श्रेयस्कर समझा। समय कुछ ऐसा था कि पंडित नेहरू, महात्मा गांधी, सरदार पटेल, अब्दुल गफ्फार खां, मौलाना आजाद, राधाकृष्ण, गोविंदवल्लभ पंत, राजेन्द्र प्रसाद एवं इंदिरा गांधी को नजदीक से देखा एवं उनके चित्र लिये। यही नहीं, विदेशी गणमान्य माउंट बेटन, चाउ एन लाई, हेलन केलर एवं रानी एलिजाबेथ सहित असंख्य नाम हैं जो होमई के कैमरे ने समय के साथ कैद किये हैं। होमई ने कई यात्रायें की हैं। एक रंगीन मूव्ही भी बनायी है और उसके स्टील्स भी साथ-साथ लिये हैं।

होमई को जानने के लिये हमें 1947 से तीस साल, पहले और तीस साल बाद के समय का अध्ययन करना होगा। उन दिनों आज जैसी सुविधायें नहीं थीं। वे रोलीफ्लेक्स, ग्राफ्लेक्स, स्पीड ग्राफिक आदि कैमरों से फोटोग्राफी किया करती थीं। इन कैमरों का वजन भी आज के कैमरों का वजन भी आज के कैमरों की तरह हल्का नहीं होता था। इलेक्ट्रॉनिक फ्लेश के बजाय फ्लेश बल्ब उपयोग आते थे। जो क्लेशवान होमई इस्तेमाल करती थीं, उसका वजन ही आठ पौंड आंका गया था। इन सब सामानों को वे सायकल पर लेकर चला करती थीं। स्वयं फिल्म धोती थीं और स्वयं प्रिंट बनाया करती थीं। आप कल्पना कर सकते हैं कि स्वयं केप्शन बनाकर, टाइप भी करती थीं और आखिर में संबंधित प्रेस को पहुँचाने भी जाती थीं।

14 एवं 15 अगस्त 1947 की रात सत्ता हस्तांतरण के चित्र, रात में 12 बजे लेने के बाद वे सुबह लालकिले पर पहुंच गयीं और ऐतिहासिक चित्र लिये। पुरुषों से कंधा से कंधा मिलाकर वे अपने आपको श्रेष्ठ साबित करती रहीं। राष्ट्रपति भवन से लेकर प्राइम मिनिस्टर हाऊस तक सारी गतिविधियों की वे साक्षी हैं। समय बदल गया। पहली जैसी बात नहीं रही। 1970 में उन्होंने कैमरे को छोड़ दिया और गुमनाम सी हो गयीं।

उन्होंने जीवन में पाया खूब था और बाद के दिनों में खोया भी खूब। 47 वर्ष की उम्र का पुत्र खो देना एवं पति की असमय मृत्यु उनके लिये आघात था ही। वे एकाकी जीवन जी रही थीं।

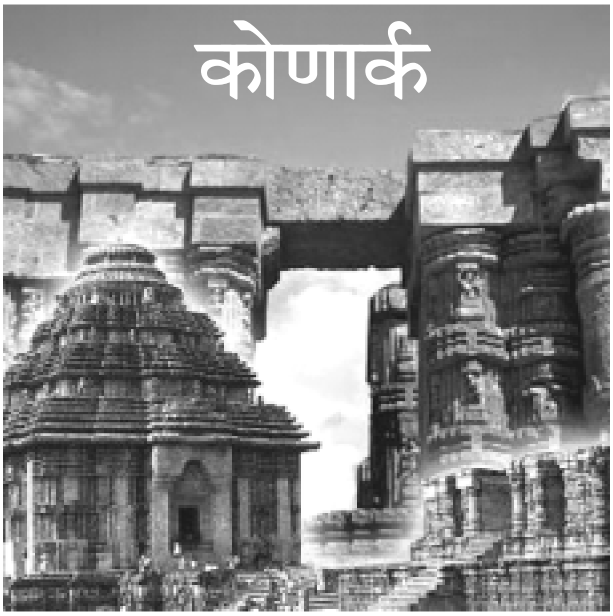

हबीबजी ने 'कोणार्क' का जो स्वप्न देखा था, उसे साकार करना 'नया थिएटर' का कर्तव्य था। वह ऋण था कलाकारों पर और उसे मंचित कर वे अपने गुरु को सच्ची श्रद्धांजलि देना चाहते थे। नया थिएटर के वरिष्ठ कलाकार और वर्तमान निदेशक रामचंद्र सिंह ने इस नाटक के निर्देशकीय सूत्र सम्हाले। कोणार्क का पहला भव्य मंचन विश्व रंगमंच दिवस से प्रारंभ होने वाले भोपाल के रंगआधार नाट्य समारोह में हुआ।

नया थियेटर की नई रंग कृति

हेमंत देवलेकर

अधूरे मंदिर की दास्तान

विश्व प्रसिद्ध धरोहरों और स्थापत्य कला के बेजोड़ वास्तुशिल्पों का इतिहास जानें तो ज्ञात होता है कि उनके निर्माताओं में राजाओं, सम्राटों के ही नामों का उल्लेख मिलता है। शिल्पियों, कारीगरों का इतिहास में कोई नाम नहीं मिलता। कई-कई वर्षों तक चलने वाले निर्माण कार्यों में बड़ी-बड़ी चट्टानों को ढोने से लेकर शिल्प में ढालने और यथेष्ट ऊँचाई पर स्थापित करने तक की प्रक्रिया में मनुष्य का कौशल और पसीना काम आया; कोई मशीन उसकी मदद के लिए नहीं थी।

जब-जब किसी राज्य पर बाहरी आक्रमण होते थे तो बरसों की अथक मेहनत से बने मंदिरों व अन्य वास्तुशिल्पों को खण्डित कर दिया जाता था। 'कोणार्क' नाटक सूर्य मंदिर निर्माण के बहाने कला और कलाकारों के अस्तित्व पर विमर्श का नाटक है। कलाकारों द्वारा बनाई गई कलाकृतियों का तो इतिहास बनता है किन्तु कलाकारों का नहीं। निर्माण के पीछे उन्हें जो त्याग करना पड़ा, जो कीमत चुकानी पड़ी उसका ज़िक्र कहीं नहीं मिलता। वे जो संस्कृति की, सौंदर्य की, संवेदना की सृष्टि करते हैं वे गुमनाम क्यों रह जाते हैं...?

इसी शाश्वत विडम्बना ने हबीब साहब को वर्षों से झकझोर कर रखा हुआ था। 'कोणार्क ' नाटक करने का विचार अवचेतन में रोपा जा चुका था। सन् 2006 में 'राजरक्त' की रचना के बाद जब नया थिएटर के सामने- 'अब क्या नया' का प्रश्न आया तो हबीबजी ने कोणार्क की परिकल्पना अपने कलाकारों के सामने रखी। सन् 2007 से इसका पाठ शुरू हुआ। महीनों रीडिंग चलती रही 'टेक्स्ट' पर बातचीत होती रही। हबीबजी नाटक को समझाते, उसमें निहित मूल प्रश्नों और चिंताओं पर बात करते। कई बार मूल नाटक के लंबे-लंबे संवादों का संपादन किया गया। इस प्रकार नाटक के मंचन की बुनियादी रचना प्रक्रिया से गुज़रते हुए काफ़ी लंबा वक्त बीता। बीच-बीच में अन्य नाटकों के प्रदर्शन और दूर-दूर की यात्राओं के कारण कोणार्क की रचना प्रक्रिया में विलम्ब होता गया। इस बीच हबीबजी का स्वास्थ्य निरंतर खराब रहने से यह महत्वाकांक्षी नाटक अधर में लटका रहा।

सन् 2009 में उनके निधन के पश्चात् देश भर में उनकी स्मृति में होने वाले नाट्य समारोहों में 'नया थियेटर' के नाटकों का अनवरत सिलसिला चलता रहा। लेकिन हबीबजी ने 'कोणार्क' का जो स्वप्न देखा था, उसे साकार करना 'नया थिएटर' का कर्तव्य था। वह ऋण था कलाकारों पर और उसे मंचित कर वे अपने गुरु को सच्ची श्रद्धांजलि देना चाहते थे। नया थिएटर के वरिष्ठ कलाकार और वर्तमान निदेशक रामचंद्र सिंह ने इस नाटक के निर्देशकीय सूत्र सम्हाले। कोणार्क का पहला भव्य मंचन विश्व रंगमंच दिवस से प्रारंभ होने वाले भोपाल के रंगआधार नाट्य समारोह में हुआ।

कोणार्क के सूर्य मंदिर के स्थापत्य की विशेषता बताते हुए रामचंद्रजी कहते हैं- ''सूर्य मंदिर चुंबकीय पत्थरों से बना था। जिसमें सूर्य की प्रतिमा अधर में स्थापित थी। न तो उसका कोई आधार था और न ही उसे लटकाया गया था। यह चमत्कृत कर देने वाला भू-चुंबकीय संतुलन इसे अद्वितीय पाषाण कला बनाता है। किन्तु मंदिर निर्माण के थोड़े समय बाद ही राज्य पर हुए षड्यंत्रकारी आक्रमण ने मंदिर को तहस-नहस कर दिया। इसका जो कलश था उसी में चुंबकीय क्षेत्र का केंद्र था। उसके गिर जाने पर सूर्य की प्रतिमा भी गिर गई। राजद्रोहियों ने कलाकारों की बारह वर्षों की मेहनत को खंड-खंड कर दिया था। नाटक में कल्पना के थोड़े से नाटकीय तत्वों के साथ इतिहास का यह सत्य जस का तस प्रस्तुत किया गया है। कथासार यह कि उत्कल प्रदेश का प्रमुख शिल्पी विषु अपनी प्रेयसी चंद्रलेखा को गर्भावस्था में अकेला छोड़कर सूर्य मंदिर के निर्माण प्रकल्प में शामिल

हो जाता है। कलिंग नरेश राजा नृसिंह देव का स्वप्न है एक विशाल सूर्य मंदिर, जो शिल्पकला और स्थापत्य कला का 'न भूतो न भविष्यति' उदाहरण हो। इस निर्माण कार्य में 1200 शिल्पी शामिल किये जाते हैं। बारह वर्ष अनुमानित समय सीमा मानी जाती है। समूचे उत्कल राज्य से आए शिल्पी अपना घर-परिवार सब कुछ भुलाकर अथक परिश्रम से रात दिन एक कर देते हैं। लेकिन राजा का दुष्ट महामात्य उन शिल्पियों की पत्नियों के साथ अनाचार करता है। कईयों को देवदासी बना देते हैं। उनकी ज़मीनें छीन लेते हैं। इस बीच वहाँ अकाल भी पड़ जाता है। मंदिर को पूरा करने में सबसे बड़ी समस्या आती है कलश स्थापना की। तभी वहाँ धर्मपद नामक युवक आता है, जिसकी सूझबूझ से सफलतापूर्वक कलश स्थापित कर सूर्य की प्रतिमा अधर में स्थापित की जाती है। जब नृसिंहदेव को महामात्य की नीचता का पता चलता है तब तक महामात्य यवनों के साथ मिलकर राजद्रोह कर देता है। सारे शिल्पी छैनी हथौड़ी रखकर हाथों में तलवारें उठा लेते हैं और शत्रुओं से लड़ते हैं। किन्तु मंदिर को क्षत-विक्षत कर दिया जाता है; और युवक धर्मपद भी मारा जाता है। मरने से पूर्व यह रहस्य खुलता है कि धर्मपद विषु और चंद्रलेखा की संतान है। रामचंद्र बताते हैं कि हबीब जी को यह बात सबसे ज़्यादा छू गई कि राज्य पर संकट की स्थिति में शिल्पियों ने अपने औज़ार रखकर हथियार उठा लिए। यहाँ कलाकार का दायित्व देश व मनुष्यता के प्रति क्या होना चाहिए, इस बात पर भी सार्थक विमर्श होता है।

नाटक में कोई स्त्री पात्र नहीं है किन्तु कथा में गौण स्त्री पात्र चंद्रलेखा को मंच पर प्रस्तुत किया है। इन दो अतिरिक्त दृश्यों को युवा नाटककार योगेश त्रिपाठी ने लिखा है। नाटक में कुल छः गीत हैं जिनका लेखन भी योगेश जी ने किया है। मंचन में आंशिक संपादन की छूट भी ली गई है। गीत उड़िया व हिन्दी दोनों भाषाओं में हैं। चूँकि नाटक में उड़ीसा की पृष्ठभूमि है अतः ओडिसा के प्रसिद्ध लोकनृत्य 'गोटिपुआ' का मनमोहक ढंग से प्रयोग किया गया है। मंदिर के मूर्ति शिल्पों में प्रणय की अनुपम भाव मुद्राएँ हैं। मंच पर इन्हें साकार करने के लिए ओडिसी नृत्य का शास्त्रीय पक्ष भी समाहित किया गया है। इस प्रकार उड़ीसा की लोकसंस्कृति तथा स्थापत्य कला दोनों की मंच पर प्रभावी अभिव्यक्ति हुई है। इसका नृत्य निर्देशन कोणार्क के नृत्याचार्य चिंतामणि ने किया है। इसकी संगीत परिकल्पना नगीन तनवीर ने की है। उड़ीसा की खुशबू अपने नाट्य मंचन में बिखेरने के लिए उडीसा की लोक धुनों का सुंदर समावेश किया गया है। विशेष ध्वनि प्रभाव वरिष्ठ कलाकार देवीलाल नाग ने दिये हैं। नाटक का सबसे आकर्षक तत्व है इसकी मंच परिकल्पना। जब आप कोणार्क मंदिर की प्रतिकृति मंच पर देखते हैं तो स्वयं को साक्षात् मंदिर के सम्मुख खड़ा पाते हैं। पीवीसी फोम से बनाया गया विशाल मंदिर, फायबर से बने ऊँचे ऊँचे शिलास्तम्भ, रथ के पहिए और सूर्य की प्रतिमा आपको कोणार्क के गौरवशाली अतीत से साक्षात्कार कराते हैं। मंच परिकल्पना में विशेष सहयोग ख्यात डिजायनर हरचंदन सिंह भट्टी का है। सेट को साकार करने में तनवीर, वसीम नाशवान तथा धन्नूलाल की मेहनत रंग लाई है।

संगीत में हारमोनियम, झाँझ, मंजीरे, क्लेरिनेट, ढोलक, तबला और नगाड़ों का समन्वय वातावरण को सुरीला बनाता है। गायन मंडली में नगीन, अमरसिंह, रविलाल सांगडे, मनहरण, देवी लाल हैं। नाटक में प्रकाश के भी कुछ अच्छे प्रभाव बन पड़े हैं।

'कोणार्क' नाटक सूर्य मंदिर निर्माण के बहाने कला और कलाकारों के अस्तित्व पर विमर्श का नाटक है। कलाकारों द्वारा बनाई गई कलाकृतियों का तो इतिहास बनता है किन्तु कलाकारों का नहीं।

पत्थरों की बड़ी बड़ी शिलाओं को ढोना उस पर छैनी हथौड़ी चलाना, नापना, स्थापित करना जैसे दृश्य अत्यंत स्वाभाविक व जीवंत बन पड़े हैं। कोणार्क मंदिर का दुर्भाग्य रहा कि वह पूरा होते न होते ही विध्वंस का शिकार हुआ और अधूरा रहा गया। ''कोणार्क अधूरा रह जाता है लेकिन उसका स्वप्न कभी मरता नहीं....'' इस संवाद के बाद सारे कलाकार पंक्तिबद्ध होकर भरत वाक्य गाते हैं- ''शिल्पी है इतिहास का वाहक आता है सुरताल बनकर.....'' कलाकार दर्शकों से बिदा लेते हैं।

पूर्व रंग

'विसर्जन' का सृजन

आलोक चटर्जी

कुलगुरु भार्गव जी के आमंत्रण पर मैं 10 नवंबर 2011 को जयपुर पहुँचा। नाट्यकुलम् के विद्यार्थी शर्मा और कैलाश मुझे स्टेशन पर लेने आए थे। बाहर खड़ी एक पीले रंग की मैजिक में बैठकर एक होटल गए फिर सीधे रवींद्र मंच, रामनिवास बाग पहुँचे। भार्गव जी ऊपर वाले कमरे में थे। पता चला कि दो बजे से रिहर्सल है। वहाँ का स्टूडियो थिएटर काम करने के लिए एक आदर्श स्थान है। संगीत नाटक अकादेमी का यह आयोजन था।

'विसर्जन' टैगोर का एक ऐसा नाटक है जो आज से सवा सौ वर्ष पहले राजसत्ता और धर्मसत्ता के द्वंद्व को गहराई के साथ रेखांकित करता है। इसमें अभिनय भाव प्रधान होना आवश्यक है और एक साथ मात्र दो या तीन चरित्र ही मंच पर होते हैं। सबसे पहले मैंने चरित्रों की भाव भंगिमा और बॉडी लैंग्वेज पर काम करना प्रारंभ किया। यह प्रक्रिया मुश्किल थी क्योंकि एक ओर भारतीय रंगमंच में एक वर्षीय डिप्लोमा कर रहे रंगकर्मी छात्र थे, वहीं दूसरी ओर पैंतीस युवा कलाकार भी थे जो वर्कशॉप से चुने गए थे और उनके अतिरिक्त सतीश श्याम रेड्डी जो मुख्य संगीतकार थे और उनकी धर्मपत्नी मीनाजी मूवमेंट देख रही थीं। प्रेरणा श्रीमाली जो कथक नृत्यांगना एवं संगीत नाटक अकादेमी अवॉर्ड विजेता हैं। वे समूची नृत्य संरचना को परिकल्पित कर रही थीं।

शाम को सात बजे रिहर्सल समाप्त हुई। फिर हम सब नाट्यकुलम परिसर जो जयपुर से तीस किलोमीटर दूर प्रह्लादपुरा गाँव शिवदासपुरा में स्थित है, वहाँ पहुँचे। एक विशाल परिसर जिसमें पन्द्रह-सोलह कमरे बाथरूम सहित, ऑफिस, बिजली कक्ष और रसोई घर सब कुछ है। साथ ही विशाल लॉन जहाँ सूर्योदय के समय हम सब साथ बैठकर चाय पीते और दिन भर के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते, फिर मैं वापस अपनी स्पीच की क्लास में जुटता। नौ बजे नाश्ता और सीधे जयपुर के रवींद्र मंच। सुबह साढ़े दस बजे - अभिनय कक्षा और एक्सर साइजेस। दोपहर एक बजे तक यही सब कुछ फिर लंच ब्रेक। दोपहर दो बजे से काम पुनः शुरू। मैं नोट करता हूँ कि संवाद कच्चे हैं तथा सही उच्चारण और भावना के साथ अर्थ प्रकट नहीं कर पा रहे हैं। मैं चुनता हूँ पुरोहित, राजा, रानी जो मुख्य चरित्र हैं लेकिन सबसे कमजोर कड़ी हैं। योगेन्द्र अच्छा अभिनेता है पर राजा के रूप में वह शब्दों का प्रयोग ठीक नहीं कर पा रहा था। सीमा रानी की भाव भंगिमा से कोसों दूर थी और संकेत पुरोहित के रूप में शब्दों को ज़रूरत से ज़्यादा चबाकर बोल रहा था, इससे स्पीच की सुंदरता पर असर पड़ रहा था। सिद्धार्थ अभी प्रक्रिया की शुरुआत में ही फँसा था। एक और दुर्घटना घटी अपर्णा की भूमिका करने वाली अभिनेत्री अचानक जयपुर से दिल्ली चली गई किसी पारिवारिक कारण से। भार्गव जी को एक ज़ोरदार झटका लगा। हमारी संगीत मण्डली में अंशु वर्मा जी थीं। वे संगीत में पीएच.डी. हैं और संगीत अध्यापिका भी। उनमें और प्रीति में यह भूमिका जीवंत करने की संभावना है। अंततः प्रीति को ही अवसर मिला क्योंकि वह 'तोता-कहानी' में पहले से मुख्य भूमिका कर रही थी। अंशु को डबल कास्ट में रखा गया है, आगे के प्रदर्शनों के लिए मैं भार्गव जी से कहता हूँ कि प्रत्येक कलाकार के साथ मैं पॉलिशिंग करूँगा। अब तक दस दिन बीत गए थे और अभी भी भार्गव जी और मैं दोनों ही 'विसर्जन' से भारी असंतुष्ट थे। भार्गव जी अपने स्वास्थ्य और उम्र की परवाह न करते हुए खूब एनर्जी लगा रहे थे। पर समूह समर्पित होते हुए भी कुछ कैजुअल था या कहें कि रंगकर्म की गंभीरता को समझना बाकी था।

अब तक दस दिन बीत गए थे और अभी भी भार्गव जी और मैं दोनों ही 'विसर्जन' से भारी असंतुष्ट थे। भार्गव जी अपने स्वास्थ्य और उम्र की परवाह न करते हुए खूब एनर्जी लगा रहे थे। पर समूह समर्पित होते हुए भी कुछ कैजुअल था या कहें कि रंगकर्म की गंभीरता को समझना बाकी था।

एक और परेशानी आ खड़ी हुई वो यह कि रवींद्र मंच की आधी लाईटें खराब थीं और तुरंत कुछ करना ज़रूरी था। मैं और भार्गव जी रवींद्र मंच सोसायटी की सचिव नीति राजेश्वर से मिले। वे बहुत ही मितभाषी और शिष्ट अफसर हैं। उन्होंने तुरंत ही व्यक्तिगत रुचि लेकर काम करने की बात की। पर काम है कि खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था। अभी निमंत्रण पत्र की डिजाइन का चुनाव करना बाकी है। ब्रोशर छपने जाना है, फोटोग्राफी होनी बाकी है।

संस्कृति मंत्री श्रीमती बीना काक से समय लेना है। भार्गव जी नीतूजी के साथ उनसे मिलने गए, उन्होंने सहर्ष समय दिया और कहा कि मैं जरूर आऊँगी लेकिन मंत्री की हैसियत से नहीं बल्कि एक रंगकर्मी और थिएटर प्रेमी होने के नाते। वे यहाँ वर्षों रंगमंच पर सक्रिय अभिनेत्री रही हैं और सलमान खान की फिल्म 'मैंने प्यार क्यों किया' में सलमान की माँ की भूमिका भी निभा चुकी हैं। पता चला कि 3, 4, 5 दिसंबर को कावालम् नारायण पणिक्कर, रतन थियाम आ रहे हैं, साथ ही कमल तिवारी, बहारूल और संगीत नाटक अकादेमी से किरण जी आएँगी। भार्गव जी काफी तनाव में हैं। नाट्यकुलम् का और छात्रों का भविष्य दाँव पर है। होने वाली प्रस्तुति और नाट्यकुलम् के छात्रों की परीक्षा और वॉयवा सब एक के बाद तय होना है। पर मुझे भरोसा हो चला है कि 'शो' बहुत सफल होंगे। मैंने सबके सामने इसकी

घोषणा भी कर दी। दरअसल ये मेरी परीक्षा थी। मैंने सबके साथ अपनी युवावस्था में काम किया है। रतन दा और पणिक्कर जी का मैं विद्यार्थी और अभिनेता दोनों रहा हूँ। मुझे मेरिट में पास होना था क्योंकि अंतिम दिन 'क्षुधित-पाषाण' - मेरा सोलो शो भी तो था।

28 नवंबर - आज एक लंबा सत्र वेशभूषा का चला। सभी कलाकारों के कॉस्ट्यूम डिजाइन फाइनल हो गए। कलर स्कीम भी। अब कपड़ा खरीदकर दर्ज़ी को देना है। चंद्रदीप हाड़ा और मालतीजी जो नाट्यकुलम् के कई कार्य देखती हैं, भार्गव जी की सहायता हेतु दिल्ली से आकर यहाँ रह रही हैं। वे नेपथ्य की व्यवस्थाओं जैसे चाय-नाश्ता, कॉफी, नींबू पानी इत्यादि का पूरा ध्यान रखतीं। सही समय पर सारी चीज़ें हाज़िर रहतीं। मीनाजी बाज़ार जाकर अगले तीन दिनों में 30 नवंबर तक सारे कपड़े खरीद लाई हैं। एक बहुत बड़ा काम हो गया। 'विसर्जन' का पूर्वाभ्यास अब रवानगी पर आ गया है।

एक दिसंबर, आज शोभा दयोदया एक्सप्रेस से जयपुर पहुंचेंगी। वे यहाँ मेकअप पर कार्य करने आई हैं। इसके अतिरिक्त मेरे सोलो शो की लाईट भी वही करती हैं। भार्गव जी बहुत आत्मीयता से मिलते हैं। शाम को पूर्वाभ्यास हुआ। संकेत पुरोहित में रम गया है और योगेन्द्र भी। राम नक्षत राय की भूमिका को जीवंत कर देता है और जयसिंह बना सिद्धार्थ समझ गया है कि चरित्र की जटिलता क्या है।

विशेष रूप से पश्चाताप के बाद आत्महत्या का दृश्य अब सहज बन पड़ा है। प्रीति अपर्णा से अच्छा कर रही है। सीमा ने रानी की भूमिका में अपने को सत्तर प्रतिशत तक सुधारा है। कल दिल्ली, मणिपुर, केरल, आसाम से अतिथिगण आना शुरू होंगे। काम तो ज़ोरों पर है, तनाव भी। मैं लाइटिंग में देर तक लगा रहता हूँ। नाट्यकुलम् का नारायण तिवारी मुझे असिस्ट कर रहा है। उसने बेसिक लाईट डिजाइन सीख ली है। उसे अनुभव चाहिए। वह प्रतिभाशाली और विनम्र है। देव अब अपने रोल को बहुत इंप्रूव कर चुका है और आत्मविश्वास से भरा हुआ है। आशा है विसर्जन धूम मचाएगा। अंत में एक परिवर्तन है मूल नाटक में पुरोहित काली माँ की प्रतिमा का विसर्जन कर देता है। परंतु प्रस्तुति में विसर्जन के बाद माँ महागौरी का उत्सर्जन होता है और वे जयसिंह को जीवित कर देती हैं।

तीन दिसंबर - सुबह 9:30 हम रवींद्र मंच पर हैं। सब शांत हैं क्योंकि पूर्वाभ्यास अच्छे से हुए हैं। नेपथ्य की तैयारी पूरी है। चौधरी, कमल जो मंच के टेक्नीशियन हैं, उनका भरपूर सहयोग है। अशोक बहुत काम जानता है। उसका प्रमोशन होना चाहिए। शाम 5:30 पर मैं एक प्रोडक्शन मीटिंग लेता हूँ। मंच पूजा होती है। 6:30। सारे अतिथि आ चुके हैं। और हॉल दर्शकों से भर गया है। ठीक 7 बजे पर्दा संगीत के साथ खुलता है। मंच पर पर्दे पर विराट कटा महिष सिर, नीले लाल रंग में - तालियाँ... और 'विसर्जन' प्रारम्भ। एक सफल प्रस्तुति 9 बजे समाप्ति। सब उत्साहित हैं। दर्शकों ने एक-एक दृश्य के संवादों पर तालियाँ बजाईं। संगीत, गायन और प्रकाश व्यवस्था ने भी दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया।

प्रस्तुति समाप्ति के बाद हम सभी मंच पर थे और पणिक्करजी, रतन थियाम, किरणजी, बहारूल ये सब मंच पर आकर सभी कलाकारों से मिल रहे थे। मुझे जब रतन दा ने गले से लगाया तो मैं थोड़ा भावुक हो गया। आखिर परीक्षा में हम सब मेरिट से 'पास' हो गए थे। मेरी घोषणा सही निकली। भार्गवजी प्रसन्नता से दमक रहे थे। अस्तु-आमीन।

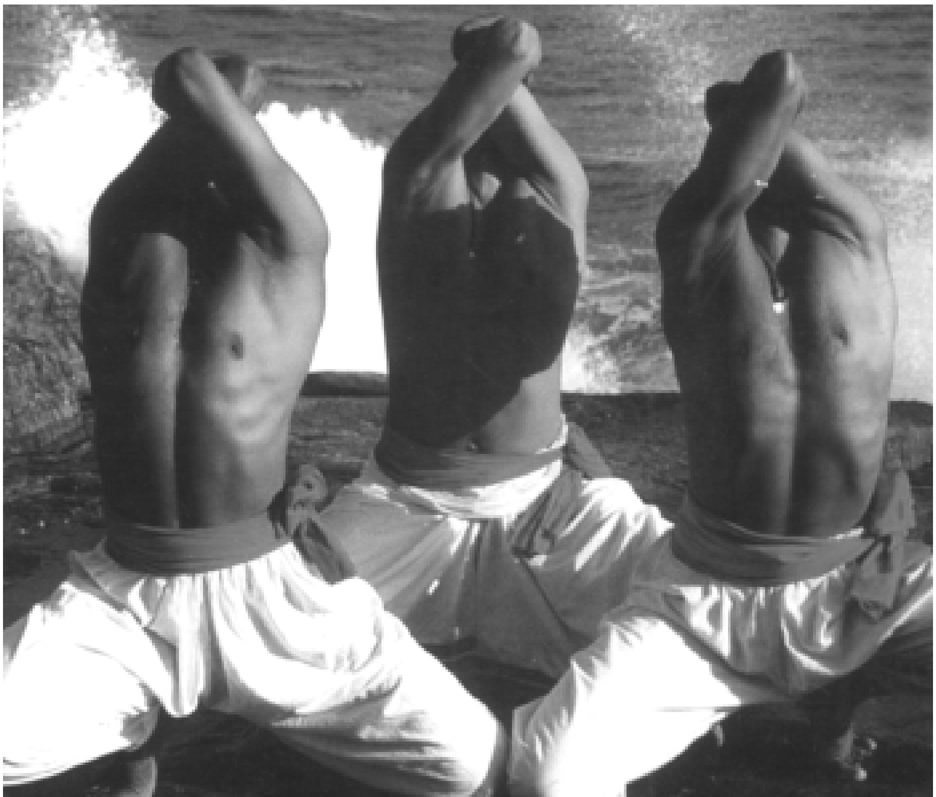

नाटक - जलम्, निर्देशन मधु गोपीनाथ-वक्कोम साजीव (केरला)

रंग कविताएं

अभिनय

केवल पात्र ही अभिनय नहीं करते
मूक स्तंभ भी अभिनय करते हैं।
जो खड़े हैं वे भी भूमिका निभा रहे हैं
जो, दरवाजे हैं वे भी केवल दरवाजे नहीं है।
खंभे केवल खंभे नहीं हैं
और खिड़कियाँ केवल खिड़कियाँ नहीं हैं।
परदे भी सरकते हैं धीरे-धीरे
जब वह मंच पर आती हैं।
और जब रावण पर्दे पर आता है
तो वह उनको एक झटका देकर आता है
कि एक ही पल में सब कुछ नष्ट कर देगा।
पर्दे भी नाटक के प्रमुख पात्र हैं
गुलाबी, हरे, नीले, पीले
और सफेद रेशमी पर्दे
अंधेरी वर्षा रात में
रहस्य की सृष्टि करते हैं।
पर्दा दोस्त बन जाता है
जब उससे चिपट जाती है एक स्त्री!
जब मंच पर सब तरफ खामोशी छाई रहती है
तो उस सन्नाटे को तोड़ती है
एक कुदाल
जो जोर से आतताई के सिर पर गिरती है।

तरंग प्रेक्षागृह में

नाटक करने वाले बाहर से आए हुए हैं
देखने वाले सब यहीं के हैं
सब एक-दूसरे को जानते-पहचानते हैं।

कोई बड़ी भारी हस्ती है
साड़ी किसी की महंगी है
तो किसी की सस्ती है।

मुख्य न्यायाधीश आया है
बत्तीवाली गाड़ी में
सुरक्षागार्ड की बंदूक पूरी भरी हुई है।
कृषि मंत्रालय के सचिव का
रौबदाब भी उनसे कम नहीं है
विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी
किसी से पीछे नहीं हैं
सब उनके पीछे-पीछे हैं।

लड़कियों को नाटक समझ में नहीं आता
फिर भी आई हैं क्योंकि
उनकी सहेलियाँ आई हैं
पूरा मेकअप करके घरेलू महिलाएं
नारी पर पुरुष के जुल्म
देखकर सहम जाती हैं
जैसे उनके रोज के देखने की बात है।
बच्चे नींद से बोझल भूख से व्याकुल
जल्दी से घर जाना चाहते।

जबकि अभी इंटरवल भी नहीं हुआ है।
मंच पर 'कास्ट्यूम ड्रामा' है।
तो दर्शकों में
उससे बड़ा 'कास्ट्यूम' चल रहा है।
महंगी साड़ियों का आलीशान प्रदर्शन
महंगे गहनों का

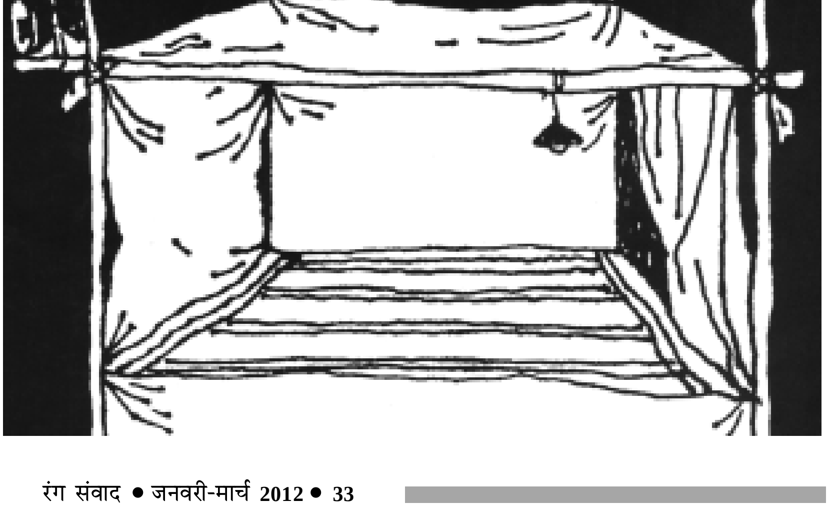

महंगी घड़ियों का
भव्य शोरूम से
निकलकर कुछ मोम के पुतले
दर्शकों के बीच आकर बैठ गए हैं।
दर्शकों के बीच बैठा हवलदार कहता है-
''इससे बढ़िया हंटर तो मैं चला सकता हूँ।''
गृहिणी कहती है- ''मंच पर खड़ी औरत
से अच्छी तरह मैं रो सकती हूँ''।
और बुढ़िया कहती है- ''इससे अच्छा
तो मैं मर सकती हूँ। मैं मरी हूँ कई बार
इसे तो ठीक से मरना भी नहीं आता।''

वह ज़ोर से ताली बजा रही है
क्योंकि उसका बेटा
पहली बार मंच पर उतरा है
वह अपनी बहन का फोटो उतारने आया है
कैमरा लेकर मंच के पास
लड़के वालों को दिखाने के काम आएगा
कि नाटकों में काम किया है।

हमारी लड़की ने पहली बार
जीन्स पहनी है
क्योंकि रोल की डिमांड थी
शहरी बिगड़ैल लड़की का किरदार करना था
वरना वह तो हमेशा
सलवार सूट में ही रहती है।
हमारे शहर में लड़कियाँ जीन्स नहीं पहनती हैं
लोग तरह-तरह की बातें करते हैं।

मेरे साले साहब आ रहे हैं-
''उनके लिए अच्छी सीट रखना
मेरी इज्जत का सवाल है''
इनकम टैक्स कमिश्नर की बीबी कहती है-
''साहब का रौबदाब है, आगे, आगे की सीट देना।''

अब नाटक शुरू होने वाला है
निर्देशक को मिलवाया जा रहा है
शहर की संभ्रांत महिलाओं से
फिल्मों और सीरियलों में फ्लॉप हो गया अभिनेता
अचानक मंच के प्रति प्रतिबद्ध हो गया है-
'कहता है रंगमंच तो मेरी रोजी-रोटी है।'
और जोर-शोर से ऑटोग्राफ दे रहा है।
टीवी वाली लड़कियाँ
उनसे 'हिन्दी रंगमंच के संकट' पर सवाल कर रही हैं।

उसके साथ आई वो उसकी लेटेस्ट बीबी है
जो उससे पहले किसी और की बीबी थी
वो अच्छी अभिनेत्री थी जिसको मेहनताना न देना पड़े
इसलिए उससे शादी ही कर ली है।
टीवी वालों को बीबी ही इंटरव्यू दे रही है सजधजकर
जैसे सिनेमा की हीरोइन हो
नाटक में वो हमेशा गरीब मजदूर भिखारिन का रोल करती है।

दोनों की कोई औलाद नहीं है
क्योंकि रंगमंच ही इनका दिनरात ओढ़ना-बिछौना है।
दिनरात घर में भी रंगमंच है
छत पर, रसोई में, ड्राइंगरूम में।

- राजेन्द्र उपाध्याय

अभिनय

सिर झुकाने का अभिनय किया,
फिर लजाने का अभिनय किया।

प्यार करने के अभिनय के साथ,
प्यार पाने का अभिनय किया।

उसकी 'लिप्सिंग' थी बिल्कुल सटीक,
उसने गाने का अभिनय किया!

कोकोकोला की पी कर शराब,
गम भुलाने का अभिनय किया।

उसने 'सैडिस्ट' के 'रोल' में,
दिल दुखाने का अभिनय किया!

हम उसे भूल पाए नहीं,
भूल जाने का अभिनय किया।

उसने नायक पे खल की तरह,
जुल्म ढाने का अभिनय किया!

- ज़हीर कुरेशी

मिथिकल सरैन्डर : निर्देशन एन. दीपक (मणिपुर)

लोक नाट्य का 'अनगढ़ हीरा'

'बिदेसिया' में पति के वियोग में तड़पती नारी की व्यथा, मज़दूरों का रोज़गार के अभाव में पलायन, बाहर जाकर चकाचौंध में फँसकर मजदूरों का दिग्भ्रमित होने की घटना को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत कर भिखारी ठाकुर ने नाट्य जगत को अचंभित कर दिया। इस विलक्षण लोक नायक के कुछ पोशीदा पहलुओं को रौशन कर रहे हैं *डॉ. अनिल पतंग।*

उत्तर भारत में कई तरह की सामाजिक विसंगतियाँ, अनमेल विवाह, जाति प्रथा, नशाखोरी और सामाजिक विषमता व्याप्त थी। उस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके युग में अनेक ऐसे नाटककार हुए जिन्होंने इन कुरीतियों पर अपने नाटकों के माध्यम से प्रहार किया। इसके कुछ ही वर्षों बाद बिहार के छपरा जिले के कुतुबपुर गाँव, जो पहले सारण जिले में हुआ करता था। पूर्व इसके यह गाँव आरा जिले का बड़ाहरा थाना में था, जिसके कारण इसे लोग शाहाबाद जिले का ही मानते हैं। इस गाँव में दलसिंगार ठाकुर नामक एक नाई के घर 18 दिसम्बर 1887 तदनुसार पौष शुक्ल पक्ष पंचमी (सोमवार) के मध्याह्न में एक बालक का जन्म होता है। बचपन में गरीबी के कारण उसके भाग्य में गाय चराना ही लिखा था। लगभग नौ साल की उम्र में एक वैश्य गुरु से सिर्फ कैथी हिन्दी का अक्षर ज्ञान प्राप्त किया। फिर रोजी-रोटी की तलाश में उसे खड़गपुर (कोलकाता) जाना पड़ा, वहाँ के सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव खासकर यात्रा और रामलीला देखकर उस पर पड़ा। उनके अन्दर अभिनय का शौक चर्राया और लिखने की प्रेरणा मिली। उनकी ज़िन्दगी में एक परिवर्तन आया। वहाँ ये जगन्नाथपुरी जाने के बाद रामचरित मानस का पाठ करने लगे, जिसका सीधा प्रभाव उनकी रचनाओं पर परिलक्षित होता है। काव्य रचना की सनक सवार हुई, उनकी रचनाओं का प्रसारण रेडियो से होने लगा। उन्होंने लिखा है- झूठो रामनाम कहला से/भोजपुरी भाषा गहला से/असही नाम फइलते जाता/रेडियो से कासी-कलकाता।

बचपन से ही अपने अनुभव के कारण उन्होंने ग्रामीण और शहरी जीवन की बारीकियों को परखा। सामाजिक समस्याओं के जो चित्र हम अपने यहाँ दिन रात देखते हैं, उन्हें भिखारी ने अपने नाटकों का कथ्य बनाया। उनका रचनाकाल 1919 से 1965 ई. तक माना जाता है। इन्होंने गाँव-गाँव तक घूम घूम कर भोजपुरी क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जागरण का संदेश फैलाया। भिखारी ठाकुर ने कुल 12 नाटकों की रचना की। जिनके नाम इस प्रकार हैं। 'बिदेसिया', 'भाई-विरोध', 'बेटी-वियोग', 'विधवा विलाप', 'कलियुग-प्रेम', 'राधेश्याम-बहार', 'गंगा-स्नान', 'पुत्र-बध', 'बिरहा-बहार', 'नकल भांड़ आ नेटुआ के' और ननद-भैउजाई'। इसके पूर्व पटना के हीरा डोम का 'अछूत की शिकायत' का प्रकाशन मासिक 'सरस्वती में हुआ। रघुवीर सहाय का 'बटोहिया' और मनोरंजन प्रसाद सिन्हा का 'फिरंगिया' बहुत लोकप्रिय हो चुका था। भिखारी ठाकुर बंगाल से गाँव लौटे तो गाँव की विविध सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समस्यायों को निकट से देखने समझने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी शैक्षिक क्षमता के अनुसार उन पर अपनी लेखनी चलानी शुरु की। अपने लोक नाटकों एवं अन्य रचनाओं के द्वारा भोजपुरी समाज में एक पुनर्जागरण का काम सकारात्मक ढंग से प्रारंभ किया। इस क्षेत्र में उन्हें लोकप्रियता भी मिली। गरीब, अशिक्षित और दलित वर्ग की जनता ने उन्हें अत्यधिक स्नेह और समर्थन दिया। सन् 1919 से 1944 तक द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारत की जनता ब्रिटिश साम्राज्यवाद का समर्थन फौजी तानाशाही के विरुद्ध कर रही थी और उस दौरान इनके प्रदर्शनों के माध्यम से ब्रिटिश नौकरशाहों ने काफ़ी कोष इकट्ठा किया। शाहाबाद के तत्कालीन कलेक्टर ने इसके बदले उन्हें 'रायबहादुर' की पदवी से नवाज़ा। बाद में वस्तुस्थिति से अवगत होने के बाद उन्हें पश्चाताप हुआ।

'बिदेसिया में पति के वियोग में तड़पती नारी की व्यथा, मज़दूरों का रोज़गार के अभाव में पलायन, बाहर जाकर चकाचौंध में फँसकर मजदूरों का दिग्भ्रमित होने की घटना को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत कर इन्होंने नाट्य जगत को अचंभित कर दिया। 'भाई-विरोध' नाटक में एक खाते-पीते संयुक्त परिवार के विघटन, 'विधवा-विलाप' में समाज में तत्कालीन विधवा के साथ दुर्व्यवहार और अत्याचार, 'गंगा स्नान' में पाखंड

और मिथ्याडंबर, 'गबरघिचोर' में नारी की व्यथा और उसके शोषण के अलावा न्याय प्रक्रिया का चित्रण किया गया है। 'ननद-भैउजाई' में बाल विवाह, 'पुत्र-बध' में नारी चरित्र का विचलन, समाज में बढ़ती हुई नशाखोरी और उसके परिणाम को 'कलियुगी प्रेम' में, 'बेटी वियोग' में बेटी को बेचने तथा अनमेल विवाह के खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद की। अपने नाटकों में इन समस्याओं के समाधान की भी चर्चा की है। इसके अलावा उपदेशात्मक रूप से धर्म और सुकर्म से जुड़ने की सलाह के साथ-साथ उन्होंने कबीर की तरह ढोंगी और पाखंडियों से भी उबरने की सलाह दी। उनकी रचनाओं में श्रमिकों के लिए कर्मशाला और बुढ़शाला (ओल्ड एज होम) की भी कल्पना की गयी थी, जो आज के लिए उपादेय हो गया है।

उनके नाटकों में नारी चिन्तन कूट-कूट कर भरा हुआ है। लगता है उन्होंने इस पर अपना ज़्यादा ध्यान केन्द्रित किया था। नारी के विभिन्न चरित्रों को गढ़ने में उनकी विशिष्टता रही है। बालिका के रूप में 'बेटी वियोग' एवं 'ननद-भउजाई' में, ब्याहता नारी का चरित्र 'पुत्र-बध', 'गंगा-स्नान' और 'भाई-विरोध' में, माँ के रूप में 'राधेश्याम बहार', 'बेटी-वियोग' और 'गंगा-स्नान' में प्रेमिका की भूमिका में राधेश्याम बहार, 'गबरघिचोर', 'बिदेसिया' और 'पुत्र-बध' के अलावा विरहिनी नारी का स्वरूप निखारा है- 'बिदेसिया', 'गबरघिचोर', 'कलियुगी प्रेम' और 'विधवा विलाप' में।

इन्होंने अपने नाटकों में नारी चरित्रों को यथासंभव भारतीय संस्कृति के अनुरूप प्रतिष्ठित करने का भी प्रयास किया है। पति के परदेश जाने के बाद भी बिदेसिया की नायिका 'प्यारी सुन्दरी' अपने भरण पोषण के साथ साथ अपने पातिवर्त्य धर्म को भी सुरक्षित रखती है, तो एक बीमार और बूढ़े पति की सेवा 'बेटी वियोग' में कमसिन नायिका 'अखजो' पूरी तन्यता के साथ करती है, जबकि वह सम्पन्न किसान उसे उसके माँ-बाप से खरीदकर लाता है। 'विधवा विलाप' में भी 'अखजो' विधवा के रूप में दुःख झेलती हुई अपने पट्टीदारों के अमानवीय व्यवहार को बर्दाश्त करने के लिए मजबूर होती है। इनका कमाल नज़र आता है जब 'कलियुगी प्रेम' के आवारा पति द्वारा नायिका के साथ ज़ुल्म करने के बाद भी, वह उसे परमेश्वर मानती है। 'राधेश्याम बहार' में पुत्र की ममता एवं मोह को दर्शाया गया है, वहीं 'कुटनी' जैसी नारी चरित्र का सृजन हुआ है, जो आज भी अपने यहाँ सहसा मिल जाती है। 'भाई विरोध' एवं 'पुत्र बध' में इनका कटु वर्णन कर ऐसे चरित्र से बचने हेतु लोगों को सावधान भी किया गया है। नारियों में आज की पाश्चात्य सभ्यता एवं अनावश्यक फैशनपरस्ती पर उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से करारी चोट की है। अपने नाटक 'पुत्र बध' में उन्होंने लिखा है- खीस में बोलत बाड़ू जानी, राखऽ पगरी के पानी/चानी भइल बाटे मँहगा लगनमा में। फिर अन्यत्र कहते हैं- खोजे लगलू झकाझक, बने खातिर चकाचक/अगिया लाइ दिहलू धरती-असमानवाँ में। बेमेल विवाह पर करारा व्यंग्य करते हुए 'बेटी वियोग' में लिखते हैं- चलनी के चालल दुलहा, सूप के झटकारल हे/ दियका के पागल बर दुआरे बाजा बाजल हे/आँवा के पाकल दुलहा, झाँवा के झारल हे/ऐसन बकलोल वर, चटक देवा के भायल है।

इनके लोक नाटकों में जिन पात्रों का सृजन किया गया है उनके नाम ग्रामीण एवं दलित वर्ग से आता है। उनके नाटकों की समस्यायें भी सामान्यतया दलित वर्ग की ही हैं। इस तरह हम देखते हैं उनके प्रत्येक नाटक में सामाजिक चेतना का प्रतिबिम्ब नज़र आता है। इनके नाटकों में समाज के प्रति कल्याण का भाव सन्निहित है। सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित इन नाटकों में संवाद उदात्त, पर अश्लील भी हैं। फिर भी वह नाटक के वातावरण की स्वाभाविकता बनाये रखते हैं।

इसी विशेषता के कारण पंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'अनगढ़ हीरा' तथा प्रिंसिपल मनोरंजन प्रसाद सिन्हा ने उन्हें भोजपुरी का शेक्सपीयर कहा है। प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह ने उनके बारे में कहा है- ठनकता हुआ गेहुँअन/तो नाच के किसी अंधेरे कोने में/धीरे-धीरे उठती थी/एक लंबी और अकेली/भिखारी ठाकुर की आवाज।

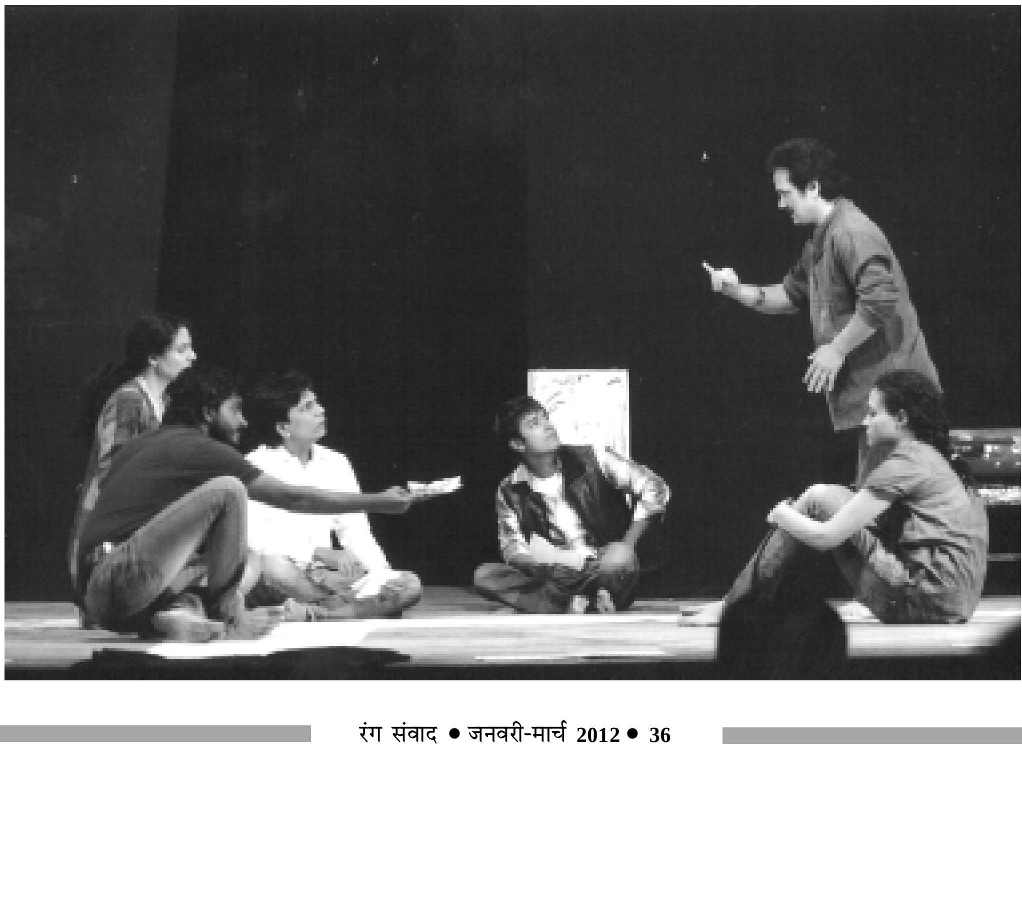

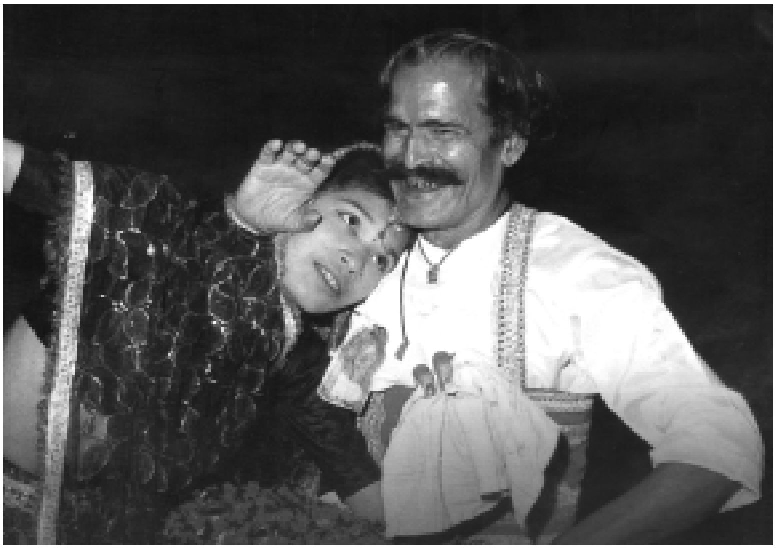

राई 'मुन्नी बदनाम हुई' या 'शीला की जवानी' जैसी अश्लीलता का पवित्र श्लील विकल्प है। राई के न रहने से एक समृद्ध नृत्य परंपरा ही नहीं जाएगी, बुंदेलखंड की पहचान भी गुम हो जाएगी।

बिलाती राई

रमेशदत्त दुबे

बुंदेलखंड की प्रदर्शनकारी कलाएँ राजस्थान-छत्तीसगढ़ जैसी समृद्ध नहीं हैं। इसकी एकमात्र पहचान राई नृत्य है। फागुन के महीने में टिमकी के स्वर, ईसुरी के बोल और बेड़नी का सतरंगी लहंगा जिन गाँवों-चौपालों को इंद्रधनुष में बदल देता है, वे आज धूसर-वीरान हो रहे हैं। राई खतरे में है। इसके ख़िलाफ़ आंदोलन चले हैं, इसे अश्लील माना जाता है, हंगामे के डर से आयोजक इसके प्रदर्शन का साहस नहीं जुटा पाते। वह भी तब जब आज लोक संस्कृति उछाल पर है। बाजार अपने उत्पादों की बिक्री के लिए लोक आधारित शैलियों का सर्वाधिक इस्तेमाल कर रहा है। कला-संस्कृति विभागों के भी सर्वाधिक कार्यक्रम लोक कलाओं पर आधारित हैं, लेकिन हमें अपने अंचल के लोकोत्सवों में भी राई कभी-कभार ही देखने को मिलती है।

राई को नागर मंच पर प्रदर्शन का पहला अवसर भारत भवन के उद्घाटन समारोह के अवसर पर मिला था। हालांकि वहाँ भी राई की लोक कलाकार बेड़नी नहीं थी। शहर की संभ्रांत महिलाओं के राई-अभ्यास को प्रस्तुत किया गया था। मध्यप्रदेश संस्कृति विभाग का रूपंकर कलाओं का शिखर सम्मान राई के संगतकार रामसहाय पांडे को दिया गया था। जापान के सुमुमु उरानो ने राई पर एक टेलीफिल्म और सूजी माटो ने बुंदेली के रससिद्ध कवि माधव शुक्ल 'मनोज' के राई के मोनोग्राफ का जापानी में अनुवाद किया था। राई हमारे स्वतंत्रता संग्राम से भी जुड़ी है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की एक चिनगारी राई के निमित्त से भी भड़की थी।

राई दैहिक श्रृंगार का नृत्य है। नृत्य में देह ही नाचती है- आत्मा नहीं। मुक्ति का रास्ता विदेह में नहीं, देह में है- देह के श्रृंगार में है। देहवादी होना कामी-लंपट होना ही नहीं, सच्चा और गहरा प्रेमी होना भी है। जीवन का अर्थ सिर्फ होने में नहीं, प्रेम में होने में रहा है। एक बेड़नी पर एक ट्रक ड्राइवर सरदारजी ऐसे आसक्त हुए कि उसके दरवाजे पर ट्रक खड़ा कर उसी के हो रहे। आज भी ट्रक का ज़ंग लगा लोहा उसी दरवाज़े पर खड़ा है।

राई के बोल में, ईसुरी की चौकड़ियां ही सर्वाधिक गाई जाती हैं। ईसुरी प्रेम, दैहिक श्रृंगार के उत्कट कवि के रूप में सम्मानित बुंदेलखंड के कंठ-कंठ में विराजे कवि हैं। उन्हें बारहों मास फगुनाया कवि कहा जाता है। फागुन में अनेक गांवों में राई के आयोजन होते हैं। फाग श्रृंगार और प्रेम का रंगोत्सव है। यह वर्जनाओं-कुंठाओं से मुक्ति का पर्व है। फाग के अलावा संपन्न वर्ग शादी-ब्याह, जन्म-दस्टोन के अवसर पर भी राई करवाते हैं। मरणासन्न के लिए महामृत्युंजय जाप की तरह राई का आयोजन आयुष्यवर्धक माना गया है। एक राई गीत ही है : 'मुंह में नइयां दांत, बब्बा सेज को बिरजे।'

हाँ, यह सत्य है कि बेड़नी देह व्यापार में भी लिप्त रही हैं। लेकिन क्या इसी आधार पर राई पर बंदिश लग जाना चाहिए। इस आधार पर क्या हमारी अधिसंख्य कलाएँ विपन्न और अर्थहीन नहीं हो जाएंगी? हमारी तो अनेक कला विधाएँ कोठों या ऐसी ही जगहों की देन हैं। क्या कला और व्यक्तिगत आचरण को अलग-अलग नहीं देखा जाना चाहिए? बेड़िया समाज में मर्द सामान्यतया निठल्ले होते हैं। परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेवारी स्त्रियों की होती है। इसके लिए परिवार की कम से कम एक बेटी को अविवाहित रखने की प्रथा रही है। वही नचनारी बनती है। जीवन यापन के लिए किसी अन्य सामाजिक विकल्प को खोजे बिना क्या पूरी बेड़िया जाति के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा नहीं हो जाएगा। इससे देह व्यापार रुकेगा या और अधिक विस्तारित होगा। राई के लिए नचनारी को उसके गांव जाकर 'साई' देकर न्योतना पड़ता है। नियत तिथि पर वह अपने संगतकारों के साथ आ जाती है। वह चूड़ीदार पायजामा पर लहंगा-चोली पहने होती है। नृत्य में उसका मुख ओढ़नी से ढँका रहता है। नयनबाणों से न तो वह किसी को घायल कर सकती है और न ही अंग प्रदर्शन से उत्तेजित। वह पद और हस्त संचालन के जरिए ही श्रृंगारिक मुद्राओं को अभिव्यक्त करती है। राई दममारु नृत्य है, पूरी रात चलता है। मिरदंगिया और नचनारी की छेड़छाड़, मान-मनुहार के बीच अनेक श्रृंगारिक मुद्राएँ दर्शनीय होती हैं। राई में गाए जाने वाले गीतों की दो या चार पंक्तियां ही होती हैं। इसके कुछ गीत ये हैं : 'तुम पे लाखों मरे, तुमने मरीं बेला काऊ पे।' 'राजा हाथ न लगाओ, जोबन से महंगी है चोली।' 'जुबना बेर-बेर से, मसकें सें हो गए सवा सेर के।'

राई 'मुन्नी बदनाम हुई' या 'शीला की जवानी' जैसी अश्लीलता का पवित्र श्लील विकल्प है। राई के न रहने से एक समृद्ध नृत्य परंपरा ही नहीं जाएगी, बुंदेलखंड की पहचान भी गुम हो जाएगी। हमें राई के सार्वजनिक और केंद्रीय आयोजनों को प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि हमारे हिंसक समय में प्रेम और श्रृंगार को थोड़ी सी जगह मिल सके।

हर क्षण जो गुज़र जाता है वह आने वाले क्षण की तुलना में बीता हुआ हो जाता है। इसीलिए बहुधा लोग अतीत को भूल वर्तमान में जीने की शिक्षा या उपदेश देते हैं। प्यारी मित्र चित्रा मुद्गल ने मुझे कुछ पंक्तियाँ यूँ लिख कर दी हैं- ''कृष्णा जीजी, खोकर भी जो हमसे खो नहीं जाता वही हमारा प्राप्य है।'' कितना श्रेष्ठ भाव है यह! अतीत के निशान हमारी ज़िंदगी से नहीं मिटते! अतीती घटनाएँ, यात्रा, रिश्ते सब जीवन से गुंथे गुनगुनाते ही रहते हैं। यदाकदा हमें झकझोर भी देते हैं।

संस्कृति की छाँव में बसा एक शहर

कृष्णा अग्निहोत्री

जन्मस्थान नसीराबाद तो स्मरण नहीं पर खंडवा की सारी रेखाएँ अमिट हैं। घाघरी पहने मैं रामेश्वर रोड से कुम्हार बेड़ा, जवाहरगंज व इमलीपुरा, घंटाघर, मेन हॉस्पिटल के सामने की नूतन कन्या विद्यालय घूमी। शासकीय शाला में तो पढ़ी नहीं। जवाहरगंज के ज़ाफ़री वाले मकान में सुश्री डौनेल्ड, श्रीमती दयाल पढ़ाती थीं। होश में ही आते खंडवा के सामाजिक जीवन का मैंने भरपूर लुत्फ़ उठाया। जब 14-15 वर्ष की थी तो एक दिन पिताजी ने अंगुली पकड़कर कार से मुझे बंगालियों के बसाहट के कोने वाले घर के सामने ले जाकर खड़ा किया। बोले, ''ये हैं माखन लाल चतुर्वेदी।'' मैं गोरेगट सुडौल शरीर के उन महान व्यक्ति को मुँह खुला रख ताकने लगी। उन्होंने मुझे लहजे व स्नेह से सर पर हाथ रखा- ''जीती रहो।'' पिताजी ने हँसकर कहा, ''इसे लिखने-पढ़ने का बहुत शौक है। बहुत बातूनी है। तब भी मैं संकोच में खड़ी दादा को ध्यान से देख रही थी कि लिखने वाले इतने अच्छे होते हैं।

हाँ सच तो यह है कि दादा ने खंडवा को एक छोटी-मोटी साहित्यिक तीर्थ-स्थली बना दिया था। कई दिग्गज साहित्यकार खंडवा उनसे मिलने आते और माणिक्य वाचनालय में कवि गोष्ठी सम्पन्न होती। मज़ाल है कि कोई शोर हो। तुलसी जयन्ती तो जैसे गंगा सी वहाँ प्रवाहित होती। दादा का वर्चस्व था। कविता, लेख, वाद-विवाद, चर्चा सबका संबंध तुलसी व रामचरित मानस ही से होना अनिवार्य था। मैंने तुलसी पर विद्वानों का बहुमूल्य भाषण सुना था। आनंद की बात तो यह थी कि वाद-विवाद में शहर के वकील, प्रोफेसर, नगरवासी पंडित सब भाग लेते। जैसे महेन्द्र पगारे, सुरेन्द्र पगारे, यदुनंदन शर्मा, तरुण नागड़ा, प्रफुल्ल नागड़ा, शारदा प्रसाद वर्मा, सोहन लाल गुप्ता, रामू पंडित जी आदि। इन सबके पास अपने तर्क, अपनी भाषा थी। अभिव्यक्ति ज़बरदस्त। मैं दाँतों तले अंगुली दबा यह सब सुन अचंभित हो जाती! काव्य निशा के संदर्भ में सोम-ठाकुर, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभागचंद्र आदि स्मरण हैं नीरज भी आये थे, दादा के कारण जैनेन्द्र, भारती, सुभद्रा चौहान, महादेवी, सुमन जी, जगदीश गुप्त आदि को सुना व देखा।

सरज़मीं : खंडवा

तुलसी जयंती के संदर्भ में एक दिन महिला दिवस रखा जाता जिसका संचालन श्रीमती शशि अरझरे करती, जिनके पति अनोखे लाल अरझरे व हरनारायण मिश्रा ने खंडवा में बसंत समारोह का आयोजन प्रारंभ किया था। इन्हें मैं फूफा व बूआ कहती थी। फूफा जी के यहाँ कई साहित्यकार ठहरते और कुछ हमारे मायके में ठहरते। शशि बुआ ने एकाएक मुझे महिला दिवस के कार्यक्रमों का भार सौंपा तो मैं महादेवी, ज्ञानवती सक्सेना, श्रीमती शंकरदयाल शर्मा आदि से मिली। मैं भाषण देने में बहुत नर्वस रहती जबकि शशि बुआ, सुब्बाराव, खरे ताई, रमा सकरगाये, सुलोचना महोदय धड़ाके से भाषण देतीं।

सच, खंडवा के उस मंच पर प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रमों की ऊँचाई अब बड़े शहरों में भी उपलब्ध नहीं। मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रही सच, जो महिलाएँ साधारण पढ़ी-लिखी थीं वे भी बढ़िया विचार व्यक्त करतीं। ऐसा शालीन सुसंस्कृत काव्य पाठ एवं विचार मंथन तो अब दिखाई ही नहीं देता। दादा के सान्निध्य में आये उनके भतीजे प्रोफेसर श्रीकांत जोशी व उनकी पत्नी प्रभु जोशी। जोशी जी व प्रभु का गुलाबी छोटा सा दूसरी मंजिल का घर मान्य साहित्यकारों के आतिथ्य से भरा रहता था। जोशीजी ने दूसरे दशक में साहित्य

की पृष्ठभूमि बरकरार रखी। मैं जब भी ससुराल से खंडवा आती मेरे लिए श्रीकांत जोशी से मिलना एक प्रतिष्ठा का कार्य होता।

ऐसे ही किसी क्षण में विवाह भोज में मेरा परिचय रामनारायण उपाध्याय भाई से हुआ। सरल, सहज अहंविहीन भाई रामनारायण प्रातः अचानक मेरे घर आ कहते, ''कृष्णा बहन, कुछ अच्छा नाश्ता खिलाओ।'' तब तक मैं संघर्ष की कड़ी ज़मीन पर खड़ी लेखन व जीविका को संभाल, अपने अस्तित्व को एक मंज़िल तक पहुँचने के लिये प्रयासरत थी। तीन कहानियाँ एक साथ धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान व कादम्बनी में प्रकाशित हो गईं व 'बात एक औरत की' उपन्यास चर्चा में था।

धन्य हो खंडवा की सरजमीं जहाँ माखनलाल जी के साथ-साथ मैंने स्वराज्य के आगरकर जी को देखा, 'अंकुश' के पालीवालजी का 'आगामी कल के' प्रभागचंद्र जोशी को देखा। सबके सब अच्छे बुद्धिजीवी थे। छोटी-छोटी पत्रकारिता की भूमि में सच्चे खरे व मूल्यों वाले थे। झूठ से समझौता नहीं और योग्यता से इंकार नहीं। खंडवा सौहार्द्र, प्रेम, स्नेह व मित्रता का गढ़ था। यहाँ गांगोली परिवार में अशोक कुमार, किशोर कुमार जैसे प्रतिष्ठित गायक व अभिनेता जन्मे। वहीं इसने भूमि के परदे के पीछे श्रेष्ठ मेकअप मैन बलराम पगारे, नाटककार रामराव चौरे जैसे निमाड़ी लेखक भी पैदा किये। जिनका हुनर, योग्यता का दर्शन हमें नार्मदीय धर्मशाला में होता। बड़े बंब पर बनी यह धर्मशाला तो ऐतिहासिक ही हो गई क्योंकि इसके आँचल में आये सारे लोग बड़े-छोटे का भेद भूल जाते। मुझे अभी तक अनूप कुमार की शादी याद है जिसमें अशोक कुमार धोती पहने, पत्नी शोभा सफेद रंग की जरी वाली साड़ी पहन हवन के पास खड़ी थी व श्रीमती गांगुली हम सबका स्वागत कर रही थीं। इसी शहर में हमने हिन्दी के ख्यातनाम कथाकार-शिक्षाकर्मी और अपने अनोखे रौबदाव के लिए मशहूर जे.पी. चौबे 'वनमाली' को आदर्श शिष्यों की पीढ़ी गढ़ते देखा।

छोटे से शहर के कुनबे में बड़ी सी सांस्कृतिक व साहित्यिक ऊर्जा फैली थी। इसमें वकीलों के अतिरिक्त डॉक्टर भी सम्मिलित थे। डॉ. कुलकर्णी डॉ. सिद्दिकी, डॉ. भारद्वाज, डॉ. अक्षय कुमार वर्मा, डॉ. सुरेन्द्र आदि की भी भागीदारी थी। कुछ स्मरण है कि कई बार चौरे जी कुछ नाटकों का भी चुनाव कर उन्हें नार्मदीय धर्मशाला में अभिनीत करवाते। एक बार शायद प्रसाद के 'स्कंदगुप्त' का चुनाव हुआ पर पात्रों की वेशभूषा किस तरह उस युग की हो, उस पर थे चिंतित थे। ये समस्या मैंने हल की उस युग की वेशभूषा पहनाकर। पगारे जी जो मेकअप मैन थे हँसे थे, ''भई एस.पी. की बीवी तो बड़ा अच्छा मेकअप करती है।''

खंडवा में साहित्यिक गतिविधियों के अतिरिक्त धार्मिक एकता गहराई से थी। हमने पाँच वर्ष पहले तक खंडवा में कभी हिन्दू मुस्लिम दंगे नहीं देखे थे क्योंकि खंडवा में हाफ़िज़अली, हिफ़ायत अली जैसे सुलझे विचार के वकील थे। यदुनंदन शर्मा जैसे समझाने वाले वकील थे। यहाँ तक कि जो कसाई इमलीपुरा में दुकान खोले थे वे भी हिन्दुओं के दोस्त थे। भाई-चारा भरा खंडवा का प्रत्येक चौराहा खिल-खिलाता हँसता ही रहता : चाहे रामेश्वर रोड से गुजरी या जवाहरगंज, कुम्हार बेड़ा या घंटा घर से शहर जीवंत एवं प्राणमय लगता था क्योंकि शहर बनता है वहां के रहने वालों से। श्रीकांत जोशी, रामनारायण उपाध्याय, दिनेश शुक्ल के साथ-साथ गीत प्रताप कदम, श्री राम परिहार, नीरव जी, विनय उपाध्याय एवं अशोक गीते, कालभोर, सुनीता चौरे, प्रमिला चौरे, ऊषा मिश्रा इसे जागरुक बना रहे थे।

क्या कहना है सुब्बाराव आंटी, शशि अरझरे बुआ व श्रीमती हांडा का जिन्होंने महिलाओं के विकास हेतु वनिता विश्व स्थापित किया। जिसे प्रारूप देने हेतु खंडवा की कई जागरूक महिलाएँ आगे आईं। सामाजिक जीवन पूर्ण समर्पण भाव से सम्पन्न होता। राजनीति रामचंद्र नागड़ा, प्रफुल्ल नागड़ा, सकरगाए,

धन्य हो खंडवा की सरजमीं जहाँ माखनलाल जी के साथ-साथ मैंने स्वराज्य के आगरकर जी को देखा, 'अंकुश' के पालीवालजी का 'आगामी कल के' प्रभागचंद्र जोशी को देखा। सबके सब अच्छे बुद्धिजीवी थे। छोटी-छोटी पत्रकारिता की भूमि में सच्चे खरे व मूल्यों वाले थे। झूठ से समझौता नहीं और योग्यता से इंकार नहीं। खंडवा सौहार्द्र, प्रेम, स्नेह व मित्रता का गढ़ था। यहाँ गांगोली परिवार में अशोक कुमार, किशोर कुमार जैसे प्रतिष्ठित गायक व अभिनेता जन्मे। इसी शहर में हमने हिन्दी के ख्यातनाम कथाकार-शिक्षाकर्मी और अपने अनोखे रौबदाब के लिए मशहूर जे.पी. चौबे 'वनमाली' को आदर्श शिष्यों की पीढ़ी गढ़ते देखा।

बाबूलाल तिवारी, भगवतराव मंडलोई आदि राजनीति के अतिरिक्त, शहर को व्यवस्थित, साफ़ एवं जागरूक रखने के लिए कटिबद्ध थे। मंडलोई जी ने खंडवा में शिक्षा हेतु बी.टी. कॉलेज, गर्ल्स कालेज खुलवाया। मेरे पिता रामचंद्र तिवारी व माँ हीरामनी तिवारी निस्वार्थ बमोडों, माहरी, बलाईगाँव आदिवासियों की मदद करते जिनके कारण मैं टपरे वाले उपन्यास लिख सकी। खंडवा के इस राजनैतिक माहौल में मैंने जयप्रकाश नारायण, प्रभाजी, रविशंकर शुक्ला, द्वारका प्रसाद मिश्रा, इन्द्राजी आदि के दर्शन किये। सारे नेता यूँ भले ही प्रतिस्पर्द्धा करते पर जैसे ही परिवार की बात आती तो हम सब बेटी, बेटा, बहन ही रहते। इसीलिए मंडलोई जी ने मेरी हिन्दी प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति की। अंग्रेजी शासन की, अंतिम घड़ियों में मैंने शिवनारायण पांडे, बाबूलाल तिवारी व भगवंत राव मंडलोई को गले तक हार पहने जेल जाते देखा। मेरे पिता मंडलोई जी का संपर्क सूत्र बने बड़े ही गोपनीय ढंग से उन्हें डाक पहुंचाते थे। सब कुछ स्वयं होता। जैसे देशसेवा का जज़्बा होना एक अनिवार्य भावना हो। लीला सरमंडल शायद वो पहली महिला थीं जो सपाटे से वाद-विवाद में अच्छे-अच्छे को पटकनी दे देतीं। मैं तो बोलने में भागती पर उन्हें देखकर खुश तो होती।

माणिक वाचनालय बहुत भाग्यशाली पुस्तकालय है जिसके आँचल में काव्य साहित्य की हरियाली अपनी मीठी सुगंध छोड़ती रही। डॉ. अक्षय कुमार वर्मा, डॉ. कुलकर्णी के अतिरिक्त मेघेश्याम वकील, सोहनलाल गुप्ता, यदुनंदन शर्मा, महेन्द्र पगारे, तरुण व प्रफुल्ल नागड़ा की बहसें समसामयिक विषयों पर विचार विमर्श का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करतीं। कला के क्षेत्र में संगीत के कई सफल कार्यक्रम वाचनालय में आयोजित होतीं। कुछ वर्ष पहले शासन ने मुझे पाठक-मंच का संयोजक बनाया। उस मंच पर खंडवा का युवा वर्ग उत्साह से भाग लेता। हम काव्य, कहानी गोष्ठी समीक्षा के अतिरिक्त अन्य चर्चाएँ उत्साह से करते। इस मंच पर ही मैं राम परिहार, प्रताप, विनय उपाध्याय, शहज़ाद, अशोक गीते, गोविंद गुजन, ज्योति मौर्य, अरुण सातले, गोविंद शर्मा आदि से परिचित हुई। पाठक मंच के अतिरिक्त महिला लेखिका क्लब भी बना। शहर की चालीस बुद्धिजीवी इसमें भाग लेतीं। मेरे कस्बे को जैसे सरस्वती का वरदान था घरेलू महिलाओं के पास अपनी एक शैली, आधुनिक विचार धारा थी जो इन्दौर में नहीं। आज भी विमला अग्रवाल, प्रमिला चौरे, मंगला चौरे, कमला रावत, ऊषा मिश्रा, सुरैय्या, जमा कैपहरीन, लवली, विमला सिंह आदि प्रमुख थीं। महिलाओं की चेतना खंडवा के प्रत्येक मुहल्ले से सुरबद्ध चीखने लगी थी जो अब एकदम ठंडे बस्ते में बंद है।

मेरी बहन चंद्रा पाठक शील्ड अंतर्गत संगीत कार्यक्रम एस.एन. कॉलेज में होता। प्रतियोगिता होती। आज इन्दौर के किसी महाविद्यालय में मेरे महाविद्यालय जैसे उत्तम नाटक नहीं अभिनीत होते न ही वैसे शालीन क्लासिकल बेस पर सुगम संगीत। इसमें प्राण फूंकते कवठेकर व राजे सर। रूपाली, वंदना, नीलम पंडित जैसी गायिका जब सरस्वती वंदना गाती तो लगता समय सरस्वती के चरणों में ठहर गया। सबसे गर्व की बात है कि किशोर कुमार जब हाफ पैंट पहने हजारों के सामने जन गण मन गाते तो हवाएं झूमकर वहाँ सुगंध फैलाने लगती। तभी तो खंडवा को संगीत क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति उन्होंने दिलवा दी। खंडवा की आबोहवा में परवरिश पाने वाले आज के बहुचर्चित कथाकार-कवि विष्णु खरे और संतोष चौबे तथा दार्शनिक चिंतक - लेखक अजातशत्रु की स्मृतियों में निश्चय ही यह शहर गाहे-ब-गाहे कौंधता होगा।

छोटा सा घरौंदा खंडवा। नाम जितना नीरस भीतर से उतना ही सरस था। जैसे खंडवा पर राम जी की कृपा थी। सभी क्षेत्र पुख्ता साफ सुथरे थे लेकिन ये मेरी अतीती यात्रा वर्तमान में आ अपनी खिलखिलाहट खो देती है। क्योंकि सभी क्षेत्र विकास की इस गति में विकसित न हो विघटन दौर से गुज़र रहे हैं। जिस मानवतावाद व अपनत्व, प्रेम एवं मैत्री की त्रिवेणी में यह धरती हरी भरी थी वो वीरान व गढ्ढों से भर रही है। मेरी अगली पीढ़ी के कुछ साहित्यकार पौधे रोप रहे हैं जैसे श्रीराम परिहार, प्रताप राव कदम, कालभोर आदि पर शायद परिवर्तन ने इस शहर को भी बाज़ारवाद व स्वार्थ में घेर सूना करना प्रारंभ कर दिया है।

अनबूझा है नाद का रहस्य

''फूल कभी भी अपनी खुश्बू, अपनी खूबसूरती का बखान नहीं करते। अनायास ही उनकी मनोहारी दुनिया हमें उसके निकट ले जाती है। गुलाब, मोगरा, रातरानी... कब किया है इन कुसुमों ने अपना बखान। अपने मौन में मुस्कुराते ये सहज ही अपनी मौजूदगी का महकता संदेश दे जाते हैं। संगीत की सुवास भी फूलों की मानिंद होती है। जिस सरगम में स्वरगंध होती है, वह सुनने वाले की आत्मा में रच-बस जाता है।''

एक भावुक, गुणी और संवेदनशील संगीतकार ही नाद के इस रहस्य की, उसके सत्य-सौन्दर्य का ऐसा सटीक बखान कर सकता है। हमारे संगीत-समय की अनमोल निधि के रूप में पं. हृदयनाथ मंगेशकर आदर के पात्र रहे हैं। कल्पना की असीम उड़ान भरते हुए भाव सरगम की ऐसी विलक्षण, उदात्त और मधुर धुनें उन्होंने रची हैं जिसकी दूसरी मिसाल खोजना कठिन है।

अंतरंग

विनय उपाध्याय

याद आती है लगभग बारह बरस पहले भोपाल के रवीन्द्र भवन में सजी उनकी महफिल जब उनकी सुर-सरिता में डूबने-उतराने के बाद भी श्रोता उनके मोहजाल से मुक्त नहीं हो पाए थे। लेकिन हृदयनाथ अपने संगीत के बारे में कोई बना-बनाया तर्क नहीं देते। कहते हैं- ''मैं प्रयोगधर्मी नहीं हूँ। प्रयोग तो योजनाबद्ध ढंग से किया जाता है। और मुझसे ये सब बगैर किसी प्रयास के, सहज ही हो जाता है। स्वरों की सजावट किसी गीत के साथ कैसे हो जाती है, ये मेरे लिए गूढ़ रहस्य है। इस क्षण का, इस अनुभूति का वर्णन करना महर्षि वेद व्यास से लेकर खुद मुझ तक, किसी के लिए भी संभव नहीं। अनेक प्रतिभावान कवि-विचारकों ने उस बिन्दु तक जाने का प्रयास किया पर उस परम क्षण की अभिव्यक्ति असंभव रही। जैसे हम ईश्वर के रूप का वर्णन नहीं कर सकते, वैसे ही यह क्षण भी वर्णनातीत है।''

विश्व क्षितिज पर संगीत का परचम फहराने वाले मंगेशकर परिवार के इस भाव-पुरुष से मिलने और सवाल करने हर कोई उतावला था। भोपाल में खासकर मराठी संगीत प्रेमियों की खासी भीड़ थी। सुविधानुसार पं. हृदयनाथ ने कुछ लोगों को हॉटल के कमरे में बुला लिया। बहन लता से लेकर संगीत के दार्शनिक पक्ष तक प्रश्न हुए और सबका सहज समाधान होता रहा। एक सवाल यही कि ऐसा माना जाता है कि लताजी के अलावा आपकी गजलों की कंपोजिशन किसी और ने नहीं गाई। संगीतकार भाई ने स्वीकार करते हुए कहा- ''लता दीदी की आवाज बहुत अच्छी है। दूसरा कोई गा भी लेता पर आवाज़ ऐसी नहीं मिलती। मुझे लगता है, उनकी आवाज में गजल के आशय स्पष्ट होते हैं। दीदी को अधिक बताने की जरूरत नहीं पड़ती। फिर वे किसी और गायक की नकल नहीं करती। उनके अपने एक्सप्रेशन्स होते हैं। वो कभी लाउड नहीं होती। गजल की तासीर के अनुसार सुर लगाती हैं।''

बड़ा ही सहज प्रश्न किया एक श्रोता ने- ''जब आप सभी भाई-बहन इकट्ठा होते हैं तो संगीत पर चर्चा तो अवश्य होती होगी।'' नहीं होती - पंडितजी ने कहा कि हम घरेलु वार्तालाप करते हैं। बहुत स्वाभाविक था कि उनके फिल्म संगीत पर कोई सवाल हो। पाँच राष्ट्रीय पुरस्कार पाने वाली फिल्म 'लेकिन' का जिक्र हुआ। एक ने जिज्ञासा प्रकट की कि इस फिल्म के एक गीत ''एक सदी से बैठी हूँ'' में आपने साज़ों का बहुत कम प्रयोग करते हुए भी उस गीत का

''मैं महत्वाकांक्षी नहीं हूँ। एक विचारशील व्यक्ति हूँ। मैं साहित्य, कला संगीत में अधिक से अधिक रमना चाहता हूँ। संगीत में निमग्न होने के कारण मेरी ज़रूरतों पर स्वतः अंकुश लग गया। बंगला, कार और बैंक बेलेंस सब जिंदगी में समय पर मुझे मिल गये, पर ये ही मेरे अभीष्ट नहीं रहे। पहली बार भोपाल ट्रेन के थर्ड क्लास के डिब्बे में बैठकर आया था। अबकी हवाई जहाज में बैठकर आया हूँ। मैं सब में संतुष्ट हूँ।

संपूर्ण प्रभाव अर्जित किया है। हृदयनाथ ने खुलासा किया- ''आपने देखा होगा, इस गीत को रेगिस्तान में फिल्माया गया है। गाते हुए जो महिला दिखाई गई है, वह पुराने जमाने की है। वो एक आत्मा है। मैंने जान बूझकर वाद्यों का कम प्रयोग किया है, क्योंकि इनकी पृष्ठभूमि शांति का प्रदेश है। फिर लता दीदी की आवाज पूरे वातावरण को प्रतिध्वनित कर देती है''। इसी प्रवाह में याद आया, मीरा बाई का भजन ''हरि बिन कैसे जीऊँ''।

हृदयनाथ बताते हैं कि इस भक्ति पद की संगीत रचना तैयार करते समय मुझे मराठी के संत कवि ज्ञानेश्वर की याद आई। जब वे दुखी होते तो अपनी माँ की याद करते। मीरा बाई की इस रचना के बारे में चिंतन करते हुए मेरे मन में आया कि जब कोई लड़की प्रेमपाश में पड़ती है तब वो अपने प्रेम के बारे में प्रिय सखी को पहले बताती है। अपने माँ-पिता या और किसी से नहीं। मीरा बाई ने अपना दुख अपनी माँ से साझा किया। वे चरम व्यथा में माँ से कहती हैं- 'हरि बिन कैसे जीऊँ'। मैंने पद का भाव समझकर इसकी स्वर रचना में 'माई-माई ओ माई' का प्रयोग किया है। इससे दुख में की गई पुकार और भी उदात्त हो उठी। लता दीदी ने इस भजन में 'माई' के अलग-अलग स्वर आन्दोलन किये हैं।

अब क्या हसरत बाकी है? मंगेशकर मुखर हुए, कहा- ''मैं महत्वाकांक्षी नहीं हूँ। एक विचारशील व्यक्ति हूँ। मैं साहित्य, कला संगीत में अधिक से अधिक रमना चाहता हूँ। संगीत में निमग्न होने के कारण मेरी ज़रूरतों पर स्वतः अंकुश लग गया। बंगला, कार और बैंक बेलेंस सब जिंदगी में समय पर मुझे मिल गये, पर ये ही मेरे अभीष्ट नहीं रहे। पहली बार भोपाल ट्रेन के थर्ड क्लास के डिब्बे में बैठकर आया था। अबकी हवाई जहाज में बैठकर आया हूँ। मैं सब में संतुष्ट हूँ।

जन-जन तक अपने संगीत को पहुँचाने के लिए क्या विचार आता है? पंडितजी इसके जवाब में मराठी के शब्द शिल्पी वि.दा. सावरकर का सूत्र खोलते हैं- ''जे जे सफल उदात्त मंगल महन् मंगल ते ते''। यानी जो श्रेष्ठ है, मंगल है, जो उदात्त है, वो अपने आप साधारण जन तक पहुँचेगा। मेरे स्वरों में शक्ति है तो वह ज़रूर श्रोताओं पर प्रभाव डालेगी।

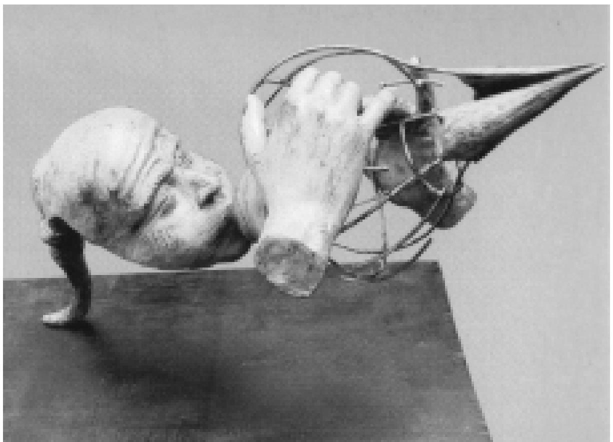

* सृजन के आसपास *

सुर के **फरिश्ते ने** दिया **सूफियाना** पैगाम

कोई कितना भी बेजान और अकेला क्यों न हो, संगीत न जाने कितने इन्द्रधनुषी रंग समेटे अपने सम्मोहन में सबको कैद कर लेता है। फिर सात सुरों की महकती फुलवारी में सूफियाना रंगत घुली हो तो महफिल का आलम ही कुछ और। भोपाल के रवीन्द्र भवन का मुक्ताकाशी मंच पिछले दिनों कुछ ऐसी ही अलमस्ती का गवाह बना। जब हर दिल अजीज़ कैलाश खैर ने अपने साथी कलाकारों के साथ सुर भरे नगमों की सौगात दी। अमन, प्रेम, शांति और समरसता के सूफियाना पैगाम देने वे आईसेक्ट विश्वविद्यालय के उद्घाटन प्रसंग में तशरीफ लाए। ढलती शाम के साथ मौसिकी का सतरंगी आँचल लहराता रहा और नौजवानों से लेकर उम्रदराज़ सुरप्रेमियों तक कैलाश की गायिकी का सुरुर चढ़ा रहा।

जब कैलाश खेर ने अपने एलबम से चुने नगमों के साथ-साथ अपने स्वचित गीत बम बम बम कैलाश, संईयाँ, मैं तेरे प्यार में दीवानी, प्रीत की लत मोहे ऐसे लागी, तेरे नाम से जी लूँ, पूरे रूहानियत के साथ पेश किए तो संगीत प्रेमी अपने कदमों की थिरकन को रोक नहीं पाए। यह सभा शिक्षा, प्रशिक्षण एवं आई.टी. के क्षेत्र में पिछले 27 वर्षों से कार्यरत संस्था आईसेक्ट तथा आईसेक्ट यूनिवर्सिटी के उद्घाटन के अवसर पर आयोजित की गयी। इस अवसर पर आईसेक्ट यूनिवर्सिटी के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे ने संगीत के सुर में अध्यात्मिकता को पिराने वाले कलाकार कैलाश खेर व उनके साथियों को पुष्पगुच्छ व स्मृति चिन्ह प्रदान कर उनका अभिवादन किया। कैलाश खैर ने कहा कि आईसेक्ट द्वारा आईटी, शिक्षा, प्रशिक्षण संगीत एवं कला के क्षेत्र में जो कार्य देशभर में व्यापक स्तर पर किया जा रहा है वह प्रशंसनीय है। आईसेक्ट की वजह से कईयों को रोजगार मिला है। आईसेक्ट को मेरी ओर से शुभकामनाएं हैं कि वे इसी तरह से अनवरत अपना कार्य करते रहें।

आईसेक्ट विश्वविद्यालय की शुभारंभ सभा में कैलाश खैर की शानदार दस्तक

आईसेक्ट यूनिवर्सिटी का प्रथम वार्षिकोत्सव समारोह भी पूरे जोश के साथ मनाया गया। 4 दिनों तक चले इस आयोजन में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जिनमें कवितापाठ, तात्कालिक भाषण, वाद-विवाद, नाटक, प्रश्नोत्तरी, नृत्य, गायन, मॉडल बनाना, चित्रकला, मेहंदी व रंगोली प्रतियोगिता में छात्र एवं छात्राओं ने पूरे उत्साह के साथ भाग लिया। इस सांस्कृतिक कार्यक्रम का भव्य समापन २२ मार्च को आईसेक्ट यूनिवर्सिटी, स्कोप कॉलेज तथा आईसेक्ट सिटी ग्रुप ने अपनी रंगारंग सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ दीं। जहाँ भारतीय लोकगीतों से लेकर फिल्मी गीत व पाश्चात्य संगीत पर थिरकते हुए छात्र-छात्राओं ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। देर रात तक चले इस संगीतमय कार्यक्रम में हजारों की संख्या में दर्शक उपस्थित थे।

इस अवसर पर आईसेक्ट यूनिवर्सिटी के कुलपति प्रो. विजयकांत वर्मा, कुलसचिव विजय सिंह, आईसेक्ट निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी, अमिताभ सक्सेना, पल्लवी राव चतुर्वेदी उपस्थित थे।

मैं सुबह का गीत हूँ...

'नए-नए विहान में/असीम आसमान/मैं उदय का गीत हूँ/मैं विजय का गीत हूँ/मैं सुबह का गीत हूँ....' जीवन की नई उमंग-तरंग और उम्मीदों का पैगाम देती इन काव्य पंक्तियों के साथ प्रख्यात कवि, नाटककार और पत्रकार डॉ. धर्मवीर भारती के रचना संसार को वनमाली सृजनपीठ में आत्मीयतापूर्वक याद किया गया। आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य की क्लासिक रचना 'अंधा-युग' के यशस्वी लेखक स्व. भारती के छियासीवें जन्मदिन (25 दिसंबर) के निमित्त आयोजित 'रचना-स्मृति' प्रसंग में खासतौर पर राजधानी के युवा सृजनधर्मियों ने शिरकत करते हुए जहाँ एक ओर भारतीजी की कालजयी कृति 'कनुप्रिया' को युवा संगीतकार संजय द्विवेदी ने सुमधुर कंठ से भावभीनी अभिव्यक्ति प्रदान की वहीं कला समीक्षक विनय उपाध्याय, रंगकर्मी सौरभ अनंत, एकता गोस्वामी, सोनाली भारद्वाज, नीरज कुन्देर तथा कवि मोहन सगोरिया, बसंत सकरगाए और हेमंत देवलेकर ने भारतीजी की विविध कविताओं का पाठ किया।

वनमाली परिसर में गूंजा भारतीजी का काव्य संगीत

कार्यक्रम के पूर्वरंग की शुरुआत करते हुए विनय उपाध्याय ने धर्मवीर भारती के बहुआयामी रचना संसार पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए उनका आशावादी गीत 'नए-नए विहान में...' और संघर्षशील मनुष्य की जिजीविषा भरी कविता 'चल रहा मनुष्य है...' पढ़ी। कवि वसंत सकरगाए ने भारतीजी द्वारा कवि गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर के जन्मशती वर्ष पर लिखी गई कविता 'कभी नहीं थी कोई नौका सोने की...' का पाठ किया। युवा रंगकर्मी सौरभ अनंत ने 'प्रार्थना की कड़ी' और 'उत्तर नहीं हूँ' का गंभीर स्वर में पाठ किया। युवा रंगकर्मी एकता गोस्वामी ने भारतीजी की बहुचर्चित कविता 'सपना अभी भी' का भावपूर्ण पाठ किया। कवि मोहन सगोरिया ने 'साबुत आइने' और हेमंत देवलेकर ने 'फागुन की शाम' तथा 'आद्यंत' कविताओं को स्वराभिनय द्वारा प्रस्तुत किया। सीधी से पधारे रंगकर्मी नीरज कुंदेर ने भारत की गुलाम मानसिकता पर कटाक्ष करती कविता 'गुलाब मत यहाँ बिखर' का पाठ किया।

रचना स्मृति प्रसंग के इस पूर्वरंग के पश्चात् संगीत सभा का आरंभ हुआ। इस आयोजन में भारतीजी की लंबी कविता 'कनुप्रिया' की तीन रचनाओं की संगीतमय प्रस्तुति शब्द और स्वर का अनोखा रोमांच समेट लाई। भोपाल के उदीयमान संगीतकार संजय द्विवेदी ने प्रेम, स्वप्न, संघर्ष और उम्मीद के बीच कृष्ण और राधा के भावनात्मक आरोह-अवरोह को मर्मस्पर्शी धुनों के साथ मुखर अभिव्यक्ति प्रदान की। गौरतलब है कि पिछले दिनों भारत भवन में मंचित हुए 'कनुप्रिया' के नाट्य प्रयोग को संजय द्विवेदी ने ही रंग संगीत से सजाया-सँवारा था। सुमधुर गायन के साथ हारमोनियम की कुशल संगत भी स्वयं संजय ने की। तबले पर बखूबी साथ निभा रहे थे युवा संगीत साधक नितेश मांगरोले। इस अवसर पर अन्य साहित्यप्रेमी जन भी उपस्थित थे। क्रिसमस की यह शाम भारतीजी की कविताओं से गुजरते हुए अविस्मरणीय बन गई।

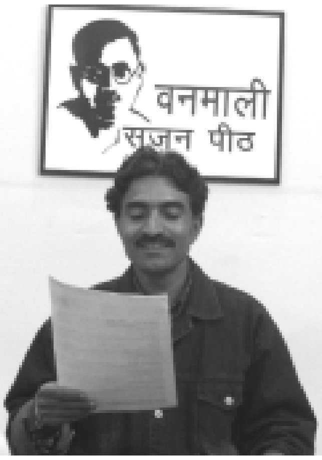

विचार के नये उद्वेलन

रंग आधार और वनमाली का साझा नाट्य समारोह

विश्वभर में प्रेम बंधुत्व और सौहार्द की कामना करते हुए प्रत्येक वर्ष 27 मार्च को दुनिया भर के रंगकर्मी अपने सृजनात्मक उत्तरदायित्व को शिद्दत से निबाहते हैं। इसी कड़ी में भोपाल में होने वाले रंग आधार नाट्य समारोह की भी अपनी विशेष पहचान है। म.प्र. संस्कृति संचानालय, तथा वनमाली सृजन पीठ द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित इस नाट्य कुंभ में कई वरिष्ठ और युवा निर्देशकों के नाटक देखने को मिले।

समारोह की शुरुआत शैडो ग्रुप भोपाल के युवा निर्देशक मनोज नायर की प्रस्तुति नेपथ्य में शकुंतला' से हुई। यह इस नाटक का पहला प्रदर्शन था जिसका लेखन भी उन्होंने ही किया। यह नाटक के भीतर घटित होने वाला नाटक है। कुछ कलाकार 'शकुंतला' नाटक की रिहर्सल कर रहे हैं। नेपथ्य का एक कलाकार जो मंच सामग्री बनाने में निपुण है वह भी अभिनय करना चाहता है। लिहाज़ा उसे एक छोटी सी भूमिका दे दी जाती है। छोटी भूमिका पाने से दुखी हुए उस कलाकार को नाटक यह समझाता है कि कोई भी चरित्र छोटा बड़ा नहीं होता। जीवन में सभी महत्वपूर्ण हैं। नाटक में मिथुन धूरिया का अभिनय विशेष आकर्षण का केंद्र रहा।

दूसरी शाम वसंत काशीकर द्वारा निर्देशित 'दस दिन का अनशन' का मंचन हुआ। हरिशंकर परसाई की कहानी पर आधारित इस नाटक में एक लफंगा बन्नू एक शादी शुदा स्त्री से प्रेम कर बैठता है। उसे पाने के लिए कई दाँव-पेंच आज़माता है। अंततः उसे अनशन के लिए प्रसिद्ध स्वामी सनकीदास का सनिध्य प्राप्त होता है। आमरण अनशन पर बैठने के बाद भी बन्नू को सावित्री नहीं मिल पाती। पुरुष की भोगवादी मानसिकता पर यह नाटक करारा व्यंग्य कसने में सफल रहा। तीसरी प्रस्तुति थी रवि मोहन 'रास' द्वारा निर्देशित 'दूसरा आदमी

नाटक-केशव लीला..., निर्देशन- बंसी कौल, प्रस्तुति-रंग विदूषक

दूसरी औरत'। आधुनिक समाज में 'लिव इन रिलेशनशिप' को उजागर करता और उसके दुष्परिणामों से आगाह करता यह नाटक विवाह व्यवस्था का पुरजोर समर्थन करता है। मधुदीप सिंह और रवि मोहन ने सधे हुए अभिनय से इस दो पात्रीय नाटक को जीवंत कर दिया। संजय मेहता द्वारा लिखित और निर्देशित 'मरघटा खुला है' का मंचन चौथी शाम हुआ। मरघटा को प्रतीक बनाकर मनुष्य के आसपास की विनाशकारी परिस्थितियों को दर्शाया गया। प्रकृति के विरुद्ध जाते हुए मनुष्य ने अपने लिए मौत के नये नये रास्ते बना लिए हैं। कबीर के दोहों के सांगीतिक प्रयोग से यह नाटक आत्ममंथन के लिए हमें विवश करता है।

प्रयोगशील नाटकों के लिए प्रसिद्ध युवा लेखक और रंग निर्देशक मानव कौल की प्रस्तुति 'लाल पेंसिल' ने अपनी नयी रंगभाषा से दर्शकों पर अलग छाप छोड़ी। एक किशोर वय छात्रा को जादुई पेंसिल मिल जाती है और वह कविताएँ लिखकर सबको चकित और प्रभावित करती है। लेकिन उसे अपनी हकीकत का पता होने पर वह आत्मग्लानि से भी भर जाती है। मन के अंतर्द्वंद्व को उद्घाटित करने वाले नाटक में माईम और देहगतियों का सुंदर प्रयोग हुआ है।

छठी शाम के.जी. त्रिवेदी द्वारा निर्देशित 'हस्तिनापुर' की प्रस्तुति हुई। विगत समय में इसके कई प्रदर्शन देश के विभिन्न शहरों में हुए हैं। महाभारत की पृष्ठभूमि पर आधारित इस नाटक में स्त्री विमर्श मुख्य मुद्दे के रूप में उभरा है। नंदकिशोर आचार्य का नाट्यालेख स्त्री की सामाजिक स्थिति पर कई सवाल उठाता है।

स्व. अलखनंदन के निधन के पश्चात् उनकी अनुपस्थिति में पहली बार मंचित चारपाई को नट बुंदेले के कलाकारों ने श्रद्धांजलि स्वरूप निष्ठा से प्रस्तुत किया। निम्न वर्गीय परिवार के सदस्यों में तनाव, कुंठा, अलगाँव को दर्शाता यह नाटक दर्शकों पर पूर्ववत प्रभाव छोड़ने में सफल रहा। विवेचना रंगमंडल, जबलपुर की नाट्य प्रस्तुति 'वल्लभपुर की रूपकथा' ने दर्शकों को भरपूर हास्य की सौगात दी। बादल सरकार लिखित नाटक का निर्देशन प्रगति विवेक पांडेय ने किया। पूर्वजों की चार सौ साल पुरानी हवेली जो अब भुतहा सी लगती है उसे खरीदने के लिए आने वाले लोग हास्य की स्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। मनोरंजन से भरपूर यह नाटक दर्शकों को बाँधे रखने में सफल रहा।

म.प्र. राज्य नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत नाटक 'तीन मेहेरिया' अपनी भावी रंग संभावनाओं से परिचित कराता है। तीन नाटकों नागमंडल, चंदा बेड़नी, जस्मा ओड़न के तीन प्रमुख स्त्री पात्रों का कोलाज तीन मेहेरियां की परिकल्पना संजय उपाध्याय ने की। समाज में स्त्रियों की व्यथा और संघर्ष को उभारने में यह अनूठा प्रयोग कारगर रहा। नज़ीर कुरैशी के निर्देशन में मत्स्यगंधा की प्रस्तुति ने महाभारत काल की प्रारंभिक घटनाओं को दर्शाया। इसकी कहानी महाभारत की जननी सत्यवती और राजकुमार देवव्रत के आसपास घूमती है। गंगापुत्र देवव्रत आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने हेतु प्रतिज्ञा कर भीष्म बनते हैं।

बारह दिवसीय रंग आधार नाट्य समारोह की समापन संध्या पर जगदीशचंद्र माथुर के लिखे ऐतिहासिक नाटक कोणार्क की प्रस्तुति हुई। हबीब तनवीर की अधूरी रही इच्छा 'कोणार्क' को नया थिएटर के कलाकारों ने मंच पर साकार कर पूरा किया। उड़ीसा का विश्व प्रसिद्ध कोणार्क सूर्य मंदिर अपनी अद्भुत स्थापत्य कला और मनुष्य के रचना कौशल का विलक्षण उदाहरण है। भव्य किलों, मंदिरों, मीनारों के निर्माण में राजाओं के बादशाहों के नाम अमर हो जाते हैं किन्तु शिल्पियों, कलाकारों, श्रमिकों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता इसी तल्ख सच्चाई को उजागर करता यह नाटक राष्ट्र के प्रति कलाकार के

उत्तरदायित्व को भी दर्शाता है। इस नाटक के मंच पर कोणार्क मंदिर की अनुकृति अत्यंत आकर्षक है। उड़ीसा के शास्त्रीय और लोक कला पक्षों का सुंदर समन्वय इसे दर्शनीय बनाता है। नया थिएटर के वरिष्ठ कलाकार रामचंद्रसिंह का निर्देशन व नगीन तनवीर का संगीत हबीब जी की रंग परंपरा को आगे बढ़ाता हुआ प्रतीत हुआ।

विभिन्न रंगों से सजे इस बारह दिवसीय नाट्य उत्सव ने भोपाल की रंग सक्रियता और प्रयोगधर्मिता का पुनः बोध कराया।

-हेमंत देवलेकर

रंग अनुसंधान का प्रयोजन

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), भोपाल में चतुर्थ राष्ट्रीय संस्कृत नाट्य महोत्सव का आयोजन हुआ। इस आयोजन के उद्घाटन अवसर पर देश के पहले 'नाट्य शास्त्र अनुसंधान केन्द्र' का शुभारंभ भी किया गया। इस अवसर पर संस्कृत नाट्य परंपरा का पर्याय बन चुके सुप्रसिद्ध रंग निर्देशक तथा नाटककार कावालम् नारायण पणिक्कर, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली के कुलपति आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, सुविख्यात नाट्याचार्य पंडित कमलेशदत्त त्रिपाठी, रंगचिंतक के.एस. राजेंद्रन, कमल वशिष्ठ, कलाविद् उदयन वाजपेयी, प्राचार्य प्रो. आज़ाद मिश्र, कलासमीक्षक संगीता गुंदेचा एवं अन्य प्रबुद्ध जन तथा संस्थान परिवार के छात्र उपस्थित थे। भवभूति प्रेक्षागार में आयोजित उद्घाटन सत्र में पणिक्कर जी ने केरल की प्राचीनतम् कला संस्कृति का उल्लेख करते हुए बताया कि सारी प्रदर्शनकारी कलाएँ आज भी जीवित हैं तथा समृद्ध हो रही हैं। उन्होंने अपने रंगकर्म में केरल की सांस्कृतिक धरोहरों के समावेश को भी रेखांकित किया। उदयन वाजपेयी ने महाकवि भवभूति की रंगदृष्टि की विशेषता पर प्रकाश डाला। संस्थान के प्राचार्य प्रो. आज़ाद मिश्र ने स्वागत भाषण में कहा कि नाट्यशास्त्र अनुसंथान केंद्र पारंपरिक एवं समकालीन भारतीय रंगकर्म पर अनुसंधान और प्रयोग की दृष्टि से स्थापित किया गया है। समारोह के दूसरे दिन व्याख्यान सत्र में आमंत्रित संस्कृत मनीषियों ने वर्तमान समय में संस्कृत नाट्य परंपरा का महत्व, उसकी चुनौतियाँ एवं संकट तथा प्रयोगशीलता पर सार्थक विमर्श किया। संस्कृत नाट्य समारोह के आयोजन में मशकधानी, कलिवेशम्, प्रसन्न राघवम्, कनुप्रिया (हिन्दी), सुशीला (हिन्दी), सीता राघवम् की नाट्य प्रस्तुतियों को विद्वानों, छात्रों तथा अन्य दर्शकगणों ने भरपूर सराहा। *-एकता*

नाटक पर सेंसरशिप क्यों?

देश के किसी भी राज्य में जब नाटक पर सेंसरशिप लागू नहीं हैं। फिर प्रगत कहे जाने वाले महाराष्ट्र में क्यों है? इस बाबत समझदारी के साथ राज्य सरकारों को सोचना होगा। विरोध स्वरूप नाट्य परिषद् को आवाज़ उठाना चाहिये साथ ही इंटरनेट पर विकिपीडिया पर मराठी रंगमंच के बारे में कोई जानकारी न होने पर ताज्जुब है। वरिष्ठ रंगकर्मी अमोल पालेकर ने अखिल भारतीय मराठी नाट्य सम्मेलन, सांगली के उद्घाटन अवसर पर कहा कि इंटरनेट विकिपीडिया पर मराठी रंगमंच के बारे में कोई जानकारी न होना आश्चर्य का सबब है। हिन्दुस्तानी रंगमंच के बाबद बहुत जानकारी हैं, लेकिन किसी भी देशी रंगमंच के मुकाबले अधिक अलहदा और संपन्न मराठी रंगमंच का ज़िक्र संक्षिप्त में हैं। सो मराठी रंगमंच की जानकारी विकिपीडिया पर उपलब्ध कराने का संकल्प नाट्यपरिषद् को करना चाहिये और आगामी नाट्य सम्मेलन तक उसे ज़रूर अमल में लाना चाहिये।

मराठी नाट्य सम्मेलन में मुझे बतौर फिल्म अभिनेता के नहीं वरन आम इंसान की हैसियत से बुलाया गया है, ऐसा मैं मानता हूँ। अब तक अभिनेता, निर्देशक, निर्माता नाट्य महोत्सव आयोजक और दर्शक इन तमाम किरदारों से मेरा रिश्ता हिन्दुस्तानी समांतर रंगमंच से जुड़ा है। लेकिन शायद आज की मौजूदा पीढ़ी इस असलियत से वाकिफ़ नहीं। लेकिन इसमें कसूर उनका भी नहीं। क्योंकि मराठी समांतर रंगमंच के सर्वव्यापी राह की जानकारी देने वाली जानकारी का ब्यौरेवार अध्ययन कभी नोट किया ही नहीं गया।

सेंसर के बाबद विस्तार से चर्चा करते मशहूर 'सखाराम बाईंडर' का ज़िक्र किया। इससे पहले भी 'गिधाड़े' के वक्त सेंसर का निडरता से मुकाबला करने वाले निर्माता के बतौर पं. सत्यदेव दुबे का ज़िक्र ज़रूरी होगा। एक तरफ सेंसर से मुकाबला करते पिछले दरवाजे से 'अन्य सेंसर बाह्य सेंसरशिप' स्वीकारने का दुरंगापन दुबे ने कभी नहीं किया। यह गौर करने लायक है। उस औलिया ने मराठी मातृभाषा न होने के बावजूद मराठी नाटकों पर बेइंतहा प्यार किया। पूरे पाँच दशक मराठी, हिन्दी रंगमंच को कई तरह से मालामाल किया। उन दुबेजी को, मेरे गुरु को प्रायोगिक समांतर रंगमंच के लिये काम करने हेतु नाट्य सम्मेलन में कभी भी सम्मानित नहीं किया गया। जिसका मुझे बेहद अफसोस है। अपनी आखिरी साँस तक दुबे सिर्फ और सिर्फ नाटक के लिये ही जीये, आज वे नहीं हैं। कम से कम मरणोपरांत ही सही हम यहाँ उपस्थित रंगमंच कलाकार और नाट्यप्रेमी मिलकर उन्हें श्रद्धांजलि दें ताकि आज मेरे यहाँ उपस्थित होने की वजह सफल होगी। *-ज्योत्स्ना भोंडवे*

दुःस्वप्न की परछाइयाँ

रामप्रकाश त्रिपाठी

लम्बे सत्ताइस वर्ष। दिनों-दिन लम्बी और गाढ़ी होती हुई डरावनी परछाई उस रात की। वही दो-तीन दिसम्बर 1984 की दरमियानी रात। उस रात ने भोपाल की पहचान बदल दी। हॉकी, शतरंज, पहलवानी, लन्तरानी वाला नहीं रहा भोपाल। ज़र्दा, गर्दा, पर्दा वाला, बेगमों और पानदान वाली ख़ालाओं का शहर नहीं रहा। ताल-तलैयों, शैल शिखरियों और तालों में ताल भोपाल ताल वाला भोपाल नहीं रहा। उस रात से एक ज़हरीली गैस के नाम से दुनिया में जाना जाता रहा है भोपाल।

कितने वर्णन, कितने अनुभव, कितने संस्मरण नहीं हैं उस रात के। कितनी किताबें लिखी गयीं, कितने नुक्कड़ नाटक हुए और किस-किस किस्म के आंदोलन। मगर भोपाल की पहचान ऐसे हादिसे से जुड़ गई थी जो इतनी लाशों से पटा था कि सारे श्मशान और कब्रिस्तान छोटे पड़ गये।

प्राकृतिक आपदाओं पर तो मनुष्य का वश नहीं, परन्तु मानव रचित त्रासदियों पर तो वश हो सकता था। फिर भी हीरोशिमा हुआ, नागासाकी हुआ। नापाक बमों की वर्षा हुई। रासायनिक हथियार बने। धरती ने चेरनेबिल और सागर ने फुकुसामा का आण्विक विकिरण झेला। इन औद्योगिक, मानवीय हादसों को तो रोका जा सकता था। गैस रिसन पर तो नियंत्रण संभव था पर यह तब होता जब मानवीय संवेदना को परे ठेल कर दुनिया को मुट्ठी में लेने की हवस नहीं होती। आर्थिक-साम्राज्य के असीम विस्तार की अनंत आकांक्षा नहीं होती। मुनाफ़े की हिंसक भूख नहीं होती। इसलिए भोपाल गैस कांड नाम का हादसा एक स्थानीय घटना नहीं, वैश्विक घटना है। इस परिघटना को संवेदन के तंतुओं से नृत्य-नाट्य कला में प्रस्तुत करने का जोख़िम उठाया-रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप ने और एक संदेश छोड़ा कि युद्ध विहीन भी हो सकती है दुनिया। नई दुनिया! वैकल्पिक दुनिया संभव है, बशर्ते मनुष्य यह ठान भर ले। 'अतीत की स्मृतियाँ' नामक नृत्य नाटिका ने प्रभावपूर्ण ढंग से यह बात कहने की कोशिश की।

नृत्य नाटिका का समग्र प्रभाव स्तब्धकारी था। महाकरुणा का कलात्मक दस्तावेज़ीकरण मृत्यु और जिजीविषा के बीच का द्वंद्व करुणा जनित महाविलाप और मृत्यु पर जीवन की विजय के दृश्यबिंब बहुत जीवंत बन पड़े थे। हालांकि कोरियोग्राफी युवा कलाकार श्रुति कीर्ति ने चन्द्र माधव बारिक के निर्देशन में की थी परन्तु नृत्य-संरचनाओं और मंच-गतियों में परिकल्पनाकार बंसी कौल की छाप स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी- जो विषय को अर्थ गांभीर्य प्रदान करने में महती भूमिका निभा रही थी। एक दृश्यबंध में सफेद लम्बी लकड़ियों से यूनियन कार्बाइड की संरचना मानव-पिरेमिड के साथ हुई थी। इसी दृश्यबंध की पुनरुक्ति में संरचित स्ट्रक्चर को हिलते हुए गैस रिसन का प्रभाव दर्शाने का कमाल भी इसी संरचना में किया गया था।

मुखौटों, मानव के विभिन्न रूपाकारों, आच्छादित गैस के सफेद आसमान के लिए अदृश्य लोक में छटपटाती मानवता, लाशों से पटी धरती आदि दृश्य बहुत जीवंत और हृदय विदारक थे। सुरेन्द्र वानखेड़े ने जो संगीत दिया था वह भी बहुत प्रतीकात्मक था। उसमें भोपाल में ताज़ियों के वक्त बजायी जाने वाली ताल का प्रयोग बहुतायत से था। इस मंथर ताल में करुणा की जुगलबंदी बृजमोहन बमरेले की वायलिन ने बख़ूबी की।

रंगश्री की षष्ठिपूर्ति

कमल जैन की प्रकाश परिकल्पना और प्रकाश संचालन ऐसा था, मानो दुःस्वप्न की परछाइयाँ ज़हन में उभर रही हों। काली-नीली-पीली परछाइयाँ स्वप्नवत, एक के बाद एक। इस बैले की परिकल्पना में नायक-खलनायक-नायिका जैसा कुछ नहीं है। बुरा वक्त है, काल रात्रि है, पूंजी का पिशाच है, आरत-पीड़ित-काल कवलित मानवता है, जुझारू संघर्ष और आन्दोलन है और उस वक्त बहे वे आँसू जो न

हिन्दू के थे, न मुसलमान के, न सिख के, न क्रिस्तान के। इंसान की आँखों से बहे आँसू सिर्फ इंसान के थे। इस लिहाज़ से दुनिया जहान के थे। बैले में राजेश जोशी, राजीव लोचन, विजय मोहन तिवारी, और प्रमोद तांवट की अभिव्यक्ति क्षम उक्तियों को लिया गया था। राजेन्द्र अनुरागी की काव्य पंक्ति-''कहीं यह आज़माइश तो नहीं थी उस ज़हर के लिए कितनी गैस काफ़ी होती है एक शहर के लिए'' के उच्चार ने प्रस्तुति में अभीष्ट भाव भर दिये।

नृत्य नाटिका यह संदेश देने में सफल रही कि हम ऐसी दुनिया हरगिज़ नहीं चाहते जहाँ हज़ारों लोग क्षणांश में अपनी जान गँवा बैठें। आने वाली पीढ़ियाँ विकलांग पैदा हों। इंसानियत और ग़ैर इरादतन सही मगर जघन्य हत्या की शिकार न हो। निरापद जीवन हमारा मौलिक अधिकार है। यह नाटिका अंधे विकास के विरुद्ध मनुष्य के विवेक को आर्त्त स्वर में आवाज़ देती है। लूट, धन लिप्सा, भ्रष्टाचार जनित उद्योग, मनुष्य को मशीन में बदलती आपराधिक कंपनियों के खिलाफ़ प्रतिरोध का स्वर बनाती है।

रंगश्री लिटिल बैले ट्रुप ने साठ वर्ष का सफ़र तय करने के बाद नये-युग में प्रवेश किया है, यह नृत्य नाटिका इसका प्रतीक भी है। इसके साथ रंगविदूषक के कलाकार भी बधाई के पात्र हैं जिन्होंने रंगश्री के साथ अनथक श्रम किया। संस्कृति मंत्रालय केन्द्र सरकार से स्वराज संस्थान तक जिसने भी सहयोग दिया वे अद्‌भुत पहल में सहयोगी ही बने हैं- कीर्ति बैले आर्ट्स भी।

नाटक को दर्शकों का समर्थन

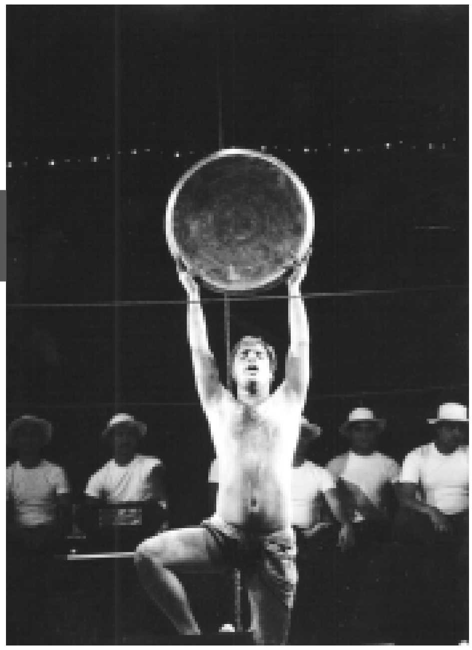

विवेचना का नाट्य उत्सव

जबलपुर की विवेचना रंगमंडल ने पिछले दिनों पांच दिवसीय रंग परसाई-2012 राष्ट्रीय नाट्य समारोह का आयोजन शहीद स्मारक में किया। यह नाट्य समारोह प्रसिद्ध कवि और गीतकार पंडित भवानी प्रसाद तिवारी को समर्पित था। विवेचना रंगमंडल पिछले कुछ वर्षो से नए निर्देशकों की नाट्य प्रस्तुतियों को राष्ट्रीय समारोह में भी मौका दे रहा है। इस बार के नाट्य समारोह की एक ख़ास बात यह भी रही कि दर्शकों को पांच दिन में छह नाटक देखने को मिले।

समारोह की शुरुआत हास्य नाटक से हुई और अंत गंभीर और विचारोत्तेजक नाटक से हुआ। नाट्य समारोह की एक विशेषता यह भी रही कि इसमें हरिशंकर परसाई, मुक्तिबोध, बादल सरकार और राही मासूम रज़ा लिखित नाटकों को प्रस्तुत किया गया। नाट्य समारोह में एक नाट्य प्रस्तुति ऐसी भी रही, जिसे कलाकारों ने बिना स्क्रिप्ट के प्रस्तुत किया। कुल मिलाकर कहें तो जबलपुर के दर्शकों को पांचों दिन अलग-अलग रंगों के नाटक देखने को मिले और उन्होंने इसका भरपूर आनंद लिया। नाट्य समारोह के समापन पर भोपाल के रंगकर्मी जावेद ज़ैदी को विवेचना रंगमण्डल ने प्रतीक चिन्ह और ग्यारह हज़ार रुपये की राशि भेंट कर सम्मानित किया।

नाट्य समारोह के पहले दिन विवेचना रंगमण्डल ने प्रगति-विवेक पाण्डे के निर्देशन में बादल सरकार लिखित 'वल्लभपुर की रूप कथा' को प्रस्तुत किया। वल्लभपुर की रूप कथा बादल सरकार का सिचुएशनल कॉमेडी नाटक है। इस नाटक को बादल सरकार ने सन् 1963 में लिखा था। इसका प्रथम मंचन बादल सरकार द्वारा स्थापित संस्था 'शताब्दी' ने 28 नवम्बर 1970 में किया था। तब से इस नाटक को देश भर की कई रंग संस्थाएँ प्रस्तुत कर चुकी हैं। वैसे वल्लभपुर की रूप कथा अंग्रेजी फिल्म 'यू आर नोएंजल्स' पर आधारित नाटक है। विवेचना रंग मण्डल ने नाट्य समारोह के माध्यम से इस नाटक को पहली बार प्रस्तुत करके मज़ा लिया। बिना मध्यांतर के लंबा नाटक होने के बावजूद दर्शक कहीं भी उकताए नहीं। एक निर्देशक विवेक पाण्डे ने मुख्य पात्र भूपति की भूमिका भी निभाई।

समारोह के दूसरे दिन दो नाट्य प्रस्तुतियाँ हुईं। द फेक्ट आर्ट एन्ड कल्चर सोसायटी, बेगुसराय ने गजानन माधव मुक्तिबोध लिखित 'समझौता' और मंच मुम्बई ने 'हम बिहार से चुनाव लड़ रहे हैं' को प्रस्तुत किया। 'हम बिहार से चुनाव लड़ रहे हैं' हरिशंकर परसाई का सशक्त व्यंग्य है और इसे विजय कुमार मंच पर उतने ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इसलिए जबलपुर में लगभग हर एक-डेढ़ वर्ष के अंतराल में इस नाटक के मंचन होते रहते हैं। विजय कुमार ने एकल अभिनय से परसाई के व्यंग्य को और धारदार बना दिया है, जिसे जबलपुर के दर्शक ख़ासा पसंद करते हैं। दूसरी नाट्य प्रस्तुति समझौता भी एकल अभिनय पर आधारित थी। यह नाटक विचारोत्तेजक है, जिसमें दुनिया को सर्कस के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पूरे नाटक में मानवेन्द्र त्रिपाठी ने फिजीकल थिएटर को एक पाठ्य पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक में संगीत और प्रकाश परिकल्पना ने विषय के सम्प्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाटक के निर्देशक प्रवीण कुमार गुंजन प्रस्तुति के माध्यम से अपनी बात कहने में पूर्णतः सफल रहे।

समारोह के तीसरे दिन दस्तक मुम्बई ने 'दास्तान गोई' की प्रस्तुति दी। 'दास्तान गोई' का लेखन व निर्देशन महमूद फारूखी ने किया है। जबलपुर में दास्तान गोई को राणा प्रताप सेंगर, शेख उस्मान और राजेश कुमार ने प्रस्तुत कर महमूद फारूखी और दानिश हुसैन की याद को ताज़ा कर दिया। दास्तान गोई की पारम्परिक दास्ताने अमीर हमजा के दो मुख्य किरदारों अमीर हमजा और उसके दोस्त अमर अय्यार की कहानी के साथ-साथ समकालीन डॉ. विनायक सेन की संघर्ष गाथा को दास्तान गोई के रूप में प्रस्तुत कर एक नया प्रयोग किया गया।

चौथे दिन मुम्बई की रंग संस्था सारंग ने 'लैट्स अनपैक!' की प्रस्तुति दी। यह नाटक दर्शकों के लिए बिल्कुल नया अनुभव रहा। बिना स्क्रिप्ट के नाटक में छह पात्र 15 दिनों के लिए दुनिया से पूरी तरह अलग होकर साथ रहते हैं। इस दौरान उनके पास एक अख़बार, टेलीविजन, जिम, बगीचा और साथ में रखने के लिए कुछ निजी

समान के अलावा कुछ नहीं रहता है। छह पात्रों की बातों से दर्शक स्वयं को आत्मसात कर लेता है। हिंग्लिश होने के बावजूद नाटक में पात्रों की बातचीत का दर्शक आनंद लेते हैं और स्वयं को भी एक पात्र समझने लगते हैं।

नाट्य समारोह की अंतिम प्रस्तुति के रूप में संभावना भोपाल ने 'टोपी शुक्ला' का मंचन किया। टोपी शुक्ला राही मासूम रज़ा के उपन्यास का नाट्य रूपांतरण है। कहानी भारत की आज़ादी के कुछ पहले की है और आज़ादी के बाद के भारत के नौजवानों के सपनों और ख़्वाहिशों को दर्शाती है। नाटक में प्रसिद्ध रंगकर्मी अलखनंदन के बेटे अंशपायन सिन्हा 'अंशु' ने टोपी शुक्ला के मुख्य पात्र की भूमिका निभाई। टोपी शुक्ला की विषयवस्तु अवश्य आज़ादी के समय की है, लेकिन इसमें उठाए गए साम्प्रदायिकता के सवाल आज भी सम-सामयिक हैं और लोगों को उद्वेलित कर रहे हैं। साम्प्रदायिकता जैसे नाज़ुक विषय को निर्देशक जावेद ज़ैदी और उनके कलाकारों ने बहुत संजीदगी से प्रस्तुत किया।

विवेचना रंगमंडल ने राष्ट्रीय नाट्य समारोह के आयोजन से इस मिथक को भी तोड़ा कि नाटकों को दर्शक देखने नहीं आते। नाट्य समारोह के पांचों दिन प्रेक्षागृह में दर्शकों की भीड़ जुटी और उन्होंने टिकट खरीद कर उत्कृष्ट रंगकर्म को समर्थन और सहयोग भी दिया।

शाकुन्तलम् : एक और प्रयोग

महाकवि कालिदास की रचना को मंचित करना किसी भी नाट्य संस्था, निर्देशक व अभिनेता के लिये एक ऐसा स्वप्न है, जिसे हर कोई जीना चाहेगा। प्रकृति, प्रेम व राजधर्म पर केन्द्रित महाकवि कालिदास की सभी श्रेष्ठ रचनाओं में से सर्वाधिक लोकप्रिय मानी जाने वाली नाट्य रचना 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को रंगमंच पर अपने कलाकारों के साथ शिप्रा संस्कृति संस्थान, उज्जैन के लिये जीने का अनुभव वर्णनीय है।

मनुष्य को प्रकृति व प्रेम इन्हीं दो बातों से सर्वाधिक लगाव रहता है और इन्हीं दो बातों का जो सुन्दर चित्रण रचनाकार ने अपनी इस नाट्यकृति में रखा है वह अतुलनीय है इसीलिए अभिनेता व नाट्य निर्देशक के लिये इसमें प्रयोग की असीम संभावनाएँ सहज मिल जाया करती हैं, जो मुझे भी मिल ही गईं। मैंने उज्जैन में रहते हुए, प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले ''अखिल भारतीय कालिदास समारोह'' के मंच पर देश-विदेश के अनेक नाट्यदलों एवं निर्देशकों के प्रयोगों को देखने व समझने का सुख भोगा है। मेरे मन-मस्तिष्क में सदैव यही रहा कि यदि मैं इस रचना को अभिनित या निर्देशित करूं तो इसमें ऐसा क्या भिन्न हो सकता है, जो शायद अब तक किसी ने न किया हो। अतः मैंने परम्पराओं पर न चलकर इसका आरंभ 'दुर्वासा' के शाप वाले दृश्य 'चतुर्थ अंक' से किया है। तत्पश्चात् महर्षि 'कण्व' का संदेश व शकुंतला की विदाई का प्रसंग दृश्यांकित करते हुए, शचीतीर्थ में राजा द्वारा दी गई अंगूठी का गिर जाना व राजा दुष्यंत द्वारा शकुंतला को पहचानने से इंकार कर देना, धीवर प्रसंग में अंगूठी का राजा के पास पहुंचाया जाना और अंगूठी को देखकर राजा दुष्यंत को शकुंतला का प्रथम, द्वितीय व तृतीय अंक में मिलन व गांधर्व विवाह का पुनः स्मृत हो जाना मैंने फ्लैश बैक में दर्शाया है। फ्लेश बैक तोड़ते हुए वसंतोत्सव का दृश्य, सानुमती द्वारा शकुंतला को दुष्यंत की दशा का संदेश देना व इंद्र के सारथी मातली के साथ स्वर्गलोक से वापसी मार्ग में धर्मपत्नी 'शकुंतला' व 'पुत्र सर्वदमन' से मिलाप दर्शाया है। लगभग 3 घण्टे अवधि के इस महानाट्य रचना को मैंने मेरे सहयोगी अजय मेहता के साथ लगभग 1.30 घण्टे में संपादित किया है।

संपादन करते समय इस बात का ख़ास ध्यान रखा है, कि इसकी अवधि तो कम हो किन्तु रचना के प्राण बचे रहें। हम दोनों ने इसमें गीत भी लिखे हैं, किन्तु इसका कर्णप्रिय और सहज ही होठों पर आ जाने वाला मधुर संगीत अजय ने तैयार किया है। जिसे स्वर दिया है अजय के साथ डॉ. अर्चना परमार तथा सुश्री संध्या गरवाल ने। मंच निर्माण विशाल मेहता व ऋषभ शर्मा के सहयोग से अनिल बेलिया की परिकल्पना में हुआ है।

गेटअप व मेकअप कुमार शिवम् (मुम्बई) व पंकज आचार्य का है। वेशभूषा स्त्री पात्र-पद्मजा रघुवंशी व आशा कटियारे एवं पुरुष पात्र-पीयूष शर्मा व गजेन्द्र नागर का रहा। नृत्य निर्देशन महाकवि कालिदास की नायिका 'शकुंतला' बनी प्रतिभा रघुवंशी ने किया। पार्श्व ध्वनि प्रभाव भूषण जैन तथा प्रस्तुति सहयोग नूपुर श्याम मुंशी का रहा। संगीत परामर्शदाताओं में श्री शीतलकुमार माथुर, पं. ओमप्रकाश शर्मा तथा डॉ. अजिता त्रिवेदी थी, तो प्रस्तुति परामर्श संस्थान अध्यक्ष डॉ. अर्चना परमार तथा निदेशक श्री गुलाब सिंह यादव का रहा। निर्देशन मेरा स्वयं रवीन्द्र देवलेकर का था।

मंच पर पात्रों को सजीव करने वाले कलाकारों में- रीतेश पवार (राजा दुष्यंत), प्रतिभा रघुवंशी (शकुन्तला), पंकज आचार्य (विदूषक), भूषण जैन (दुर्वासा), सुभाष नागर (कण्व), पायल काले (प्रियंवदा), पूजा शर्मा (अनसूया), आशा कटियारे (गौतमी), अजय मेहता (पुरोहित व मातली), पीयूष शर्मा (शारंगरव), गजेन्द्र नागर (शारद्वत), मनीष नंदवाल (विश्वामित्र व कंचुकी), अर्चना चौहान (मेनका व सानुमति), संकेत चौहान (सर्वदमन व मृग), विशाल मेहता (प्रतिरूप दुष्यंत व सारथी), सुष्मिता पवार (प्रतिरूप शकुंतला), ऋषभ शर्मा (श्याल), अनिल बेलिया (मछुआ), अनिल कलोशिया (आरक्षी व शिष्य), नेहा हिरवे (प्रतिहारी), अंजलि मेहता (चतुरिका), प्रेरणा मेहता, अनु भायल, अमृता चौहान (तपस्विनियाँ) थीं।

-रवींद्र देवलेकर

चार्ली चैप्लीन
हास्य नाट्य समारोह

रोजमर्रा की भागती दौड़ती ज़िंदगी ने हमें कुछ दिया है तो वह है 'तनाव', 'चिंता', 'गुस्सा' और हमसे कुछ छीना है तो वह है शांति, सुकून और हँसी। तनाव इतना बढ़ गया है कि सहसा आने वाली हँसी, ठहाके अब दूभर हो गए हैं। हँसने के लिए क्लब ज्वाइन करना पड़ते हैं। ऐसे हास्य विहीन माहौल में हमें बरबस याद आते हैं महान हास्य अभिनेता चार्ली चैप्लीन। विशुद्ध हास्य का प्रतिमान बन चुके चार्ली चैप्लीन की स्मृति में रंगसमूह भोपाल ने तीन दिवसीय हास्य नाट्य समारोह आयोजित कर स्वस्थ हास्य-मनोरंजन बिखेरने की एक ईमानदार कोशिश की। वरिष्ठ रंगकर्मी अशोक बुलानी हल्के फुल्के पारिवारिक नाटकों जिनमें हास्य और मनोरंजन के चमकदार वरख में लिपटा सामाजिक संदेश होता है के लिए पहचाने जाते हैं।

हमारी ज़िंदगी की विडम्बना भरी तस्वीर को थोड़ा हँसाते थोड़ा रुलाते हुए रंगमंच पर दिखाने वाले निर्देशक अशोक बुलानी का हास्य तथा मनोरंजन के प्रति आग्रह उनके रंगमंचीय उद्देश्य को भी मासूमियत से प्रकट करता है। अपनी इसी प्रतिबद्धता को निभाते हुए उन्होंने तीन दिन में 5 नाटकों की प्रस्तुति दी। जिनका केंद्रीय तत्व हास्य था। पहली शाम 'शराफ़त तेरी ऐसी तैसी' का मंचन हुआ और भारत भवन के अंतरंग में हँसी का सैलाब फूट पड़ा। यह नाटक आजकल के ज़माने में एक शरीफ़ आदमी की व्यथा कहता है। शराफ़त से जीयें तो ज़माना कमज़ोर और बेवकूफ समझने लगता है। जब एक झगड़ालू प्रवृत्ति का परिवार शराफ़त से रहने की कोशिश करता है तो उसे डरपोक, बेचारा और बेवकूफ समझा जाता है अंततः वह शराफ़त का चोला उतार कर फेंक देता है। इस नाटकीय घटना क्रम में कई प्रसंग आते हैं जो हँसा हँसाकर दर्शकों को लोटपोट कर देते हैं। नाटक शराफ़त से जीने वालों पर व्यंग्य कसता हुआ समाप्त होता है। हमारे समय की विडंबनाओं को हँसी के माध्यम से उजागर करने वाले अभिनेताओं में प्रवीण महूवाले, सुशील प्रसाद, मोहित शेवानी, सरिता खियानी, जगदीश बागोरा, दीपक तिवारी, स्वाति केवलानी, ब्रजेश अनय, यासीन ख़ान, कल्पना चंदानी, उदय नेवालकर, अजय कपूर, भावना जनवानी, हमीद मामू, संदीप राव, विवेक जारोलिया, आलोक गच्छ ने भूमिकाओं के साथ न्याय किया। मूल मराठी में वसंत सबनीस द्वारा लिखे गए इस नाटक का निर्देशन अशोक बुलानी ने किया था।

समारोह के दूसरे दिन 'साल गिरह' और 'दुलारी बाई' का मंचन हुआ। मूल मराठी नाटक सालगिरह के लेखक रत्नाकर मतकरी हैं। जनरेशन गैप पर आधारित यह नाटक एक मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी है। इसमें बेनी माधव अपनी सालगिरह मनाते हैं। उन्हें तोहफ़े में कुछ ऐसी अनपेक्षित चीज मिलती है जिसे पाकर उनसे न तो हँसते बनता है और न ही रोते। नाटक में युवा पीढ़ी के आत्म निर्भर होने और अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए संघर्ष करने की प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया। बुज़ुर्ग पीढ़ी अक्सर युवाओं को दिशाहीन और नाकाबिल मानती है। दरअसल ऐसी धारणाओं के चलते युवाओं को उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। युवाओं की ताकत के प्रति सद्भावना पूर्ण माहौल ज़रूरी है। इस सामाजिक संदेश को पहुँचाता हुआ यह नाटक दर्शकों को हँसाने में भी सफल रहा। निर्देशन अशोक बुलानी का रहा। मणि मधुकर द्वारा लिखित नाटक 'दुलारीबाई' का निर्देशन मोहन द्विवेदी ने किया। दुलारी बाई की लालची प्रवृत्ति नाटक की केंद्रीय कथावस्तु है। पैसे की लालसा से कोई अछूता नहीं है। लेकिन किसी में यह लालसा इतनी बढ़ जाती है कि उसके बुद्धि और विवेक को भ्रष्ट कर देती है। प्रहसनात्मक शैली के इस नाटक में कहीं कहीं हास्य के रंग बिखरते रहे। समारोह की अंतिम शाम हँसा-हँसाकर लोट पोट कर देने वाले नाटक 'घपले में घपला' का मंचन हुआ। इसका निर्देशन अशोक बुलानी ने किया था। मूल मराठी में वसंत सबनीस द्वारा लिखे गए नाटक का हिंदी अनुवाद रंगकर्मी उदय शहाणे ने किया है। नाटक के मुख्य किरदार माधव देशपांडे के साथ एक दिन एक दुर्घटना घट जाती है। उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट दो महिलाएँ लिखाती हैं। दोनों स्वयं को माधव की पत्नी बताती हैं। माधर दोनों के साथ शादीशुदा जिंदगी का ऐशो आराम लूट रहा था। लेकिन यह राज़ खुल जाने पर मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। पूरे नाटक में घटनाक्रम हास्य से गूंथा हुआ है। अंतिम दिन की प्रस्तुति थी रीता वर्मा के निर्देशन में 'चार्ली चली चार्ली के पास' हास्य लघु नाटिका।

भावानुभाव का लालित्य

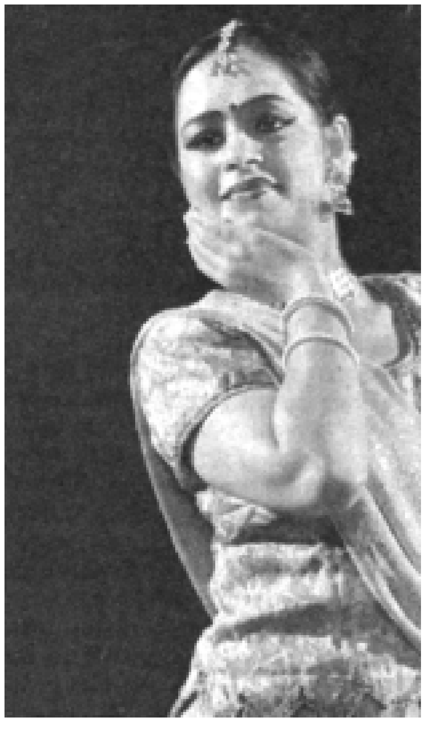

कथक की प्रस्तुतियों पर केंद्रित 'भावानुभाव' समारोह में ख्याति लब्ध युवा प्रतिभाओं का समागम हुआ। भारत भवन के संगीत केंद्र अहनद द्वारा कथक पर केंद्रित तीन दिवसीय आयोजन कथक के विभिन्न घरानों की खुशबू तथा पारंपरिक और नए आविष्कारों के सुंदर सामंजस्य की सौगात लेकर आया। समारोह का आरंभ अहमदाबाद से आई नृत्यांगना रूपांशी ठकरार के नृत्य से हुआ। भावों का सुन्दर अभिनय और देहगतियों का लालित्य रूपांशी की नृत्य प्रस्तुति का मुख्य आकर्षण रहा। उन्होंने भजन, 'बरसे बदरिया सावन की...' पर मनमोहक प्रस्तुत दी। रूपांशी के नृत्य में थोड़ा कच्चापन ज़रूर है पर निरंतर साधना से निष्णात होने की पूरी संभावना भी नज़र आती है। भावानुभाव की अगली सभा में बनारस घराने की ग्यारहवीं पीढ़ी के अत्यंत तेजस्वी कथक नर्तक विशाल कृष्ण ने प्रस्तुति दी। अपनी रससिद्ध भावभंगिमाओं और लयताल में गुंथे घुंघरूदार पद संचालन ने दर्शकों को आनंद विभोर कर दिया। इस नृत्य प्रवण युवा ने कथक की तालीम कथक सामग्री सितारा देवी और पिता मोहन कृष्ण से ली है। ख्यात कथक नर्तक पं. गोपी कृष्ण के भतीजे विशाल ने महत्वपूर्ण नृत्य

समारोहों में शिरकत की है। यहाँ विश्वनाथ अष्टकम् की प्रस्तुति देते हुए शिव आराधना से अपने नृत्य का मंगलाचरण किया। इसके बाद बनारस घराने का नटवरी कथक पेश किया जिसके माध्यम से भगवान कृष्ण और गोपियों के साथ क्रीड़ा-कलापों, छेड़छाड़ तथा विनोदी चेष्टाओं को मनमोहक रूप से प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् विशाल ने मयूर नृत्य व थाली नृत्य पेश कर कथक में अपनी साधना का परिचय दिया। तबले पर कुशहाल कृष्ण, गायन व हारमोनियम पर आनंद किशोर मिश्रा, पढंत एवं बोल मोहित कृष्ण तथा सितार पर आनंद मिश्रा ने कुशल संगत की। समारोह की अंतिम प्रस्तुति पुणे की वरिष्ठ कथक नृत्यांगना प्रेरणा देशपांडे ने दी। उन्होंने सर्वप्रथम गणेश वंदना 'प्रथम सुमिर श्री गणेश' प्रस्तुत की। इसके पश्चात् उन्होंने 12 मात्राओं के ताल चौताल में तांडव अंगलास्य अंग को परन, आमद, तिहाइयों और चक्करदार ढंग से प्रस्तुत किया। कथक का खास अंग 'गत विकास' भी शुद्धता लिए था। उन्होंने अपनी प्रस्तुति का समापन राग भैरवी में निबद्ध तराना से किया। तबले पर चारूदत्त फड़के, गायन में मृगमयी सिकनिस, हारमोनियम पर सलीम अल्लाहवाले, सारंगी पर फारुख खाँ और पढंत में ईश्वरी देशपांडे ने सधी हुई संगत की।

करुणेश नाट्य समारोह

''विहँसती कलियाँ'' मुक्तक एवं गीत संग्रह एक ऐसे कवि की रचना है जिसे मध्य प्रदेश की सबसे बड़ी दुर्घटना ''भोपाल गैस त्रासदी का शिकार होना पड़ा। कृष्ण कुमार तिवारी 'करुणेश' गैस त्रासदी में दिवंगत मजदूर नेता और कवि को रंगमंचीय श्रद्धांजलि स्वरूप करुणेश राष्ट्रीय नाट्य महोत्सव का आयोजन 2 से 6 जनवरी के बीच किया गया।

साल 2012 की दूसरी शाम से प्रारंभ नाट्य महोत्सव में भारत भवन रंगमंडल के सदस्य, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से स्नातक वरिष्ठ रंगकर्मी जावेद ज़ैदी को करुणेश नाट्य सम्मान से अलंकृत किया गया। इस समारोह का शुभारंभ रंगकर्मी, रंगनिर्देशक एवं राज्य नाट्य विद्यालय के निदेशक संजय उपाध्याय द्वारा निर्देशित नाटक ''कहाँ गये मेरे उग्ना'' से हुआ। हिन्दी साहित्य के आदिकाल के कवि ''विद्यापति'' के जीवन पर आधारित नाटक 14वीं शताब्दी के मिथिलांचल एवं मिथिला में ओईवर राजवंश के शासन को प्रदर्शित करता है। जो दिल्ली और जौनपुर के सुल्तानों के अधीन हैं तथा इन पाँच राजाओं के सलाहकार हैं विद्यापति। एक महान कवि की कथा ''कहाँ गये मेरे उग्ना''। ''निर्माण कला मंच'' पटना के कलाकारों द्वारा मंचित किया गया। प्रस्तुति में मुख्य भूमिका में सुमन कुमार, शारदा सिंह, सुब्रो भट्टाचार्य, अविजित चक्रवर्ती, अभिषेक बनफूल नायक, कोमल प्रिया थे। प्रकाश परिकल्पना मनीष जोशी एवं मंच परिकल्पना सुब्रो भट्टाचार्य की थी।

दूसरी शाम विजय तेंदुलकर कृत स्त्री समलैंगिकता पर आधारित नाटक ''मीता की कहानी का मंचन'' परफॉर्मर्स समूह, उदयपुर द्वारा युवा निर्देशक कविराज लईक के निर्देशन में किया गया। समारोह की तीसरी प्रस्तुति नाटक हम-तुम आखोजोब के मूल रूसी नाटक ''ओल्ड वर्ल्ड'' का हिन्दी रूपान्तरण है। सैनोटोरियम में लम्बी बीमारी से लड़ रही नायिका की कहानी है। सैनोटोरियम के प्रमुख, नायिका के वैयक्तिक संवेदन और जीवन के प्रति उनके अनोखे दृष्टिकोण को समझते और अपने अन्तर्द्वन्द्व से लड़ते हुए जान पड़ते हैं। इन दोनों चरित्रों के अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का तानाबाना है ''हम तुम''। जिसका निर्देशन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से स्नातक सुरेश भारद्वाज ने किया। समारोह की अगली शाम अभिमंच कला एकांश मंच लखनऊ की प्रस्तुति 'एवं इन्द्रजीत' रही। डिजाइनिंग के स्तर पर श्रेष्ठ होने के साथ ही कलाकारों ने भी अपने कुशल अभिनय से नाटक को सफल बनाया।

समारोह का समापन द राईजिंग सोसायटी ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर, भोपाल द्वारा प्रस्तुत नाटक सूर्यास्त से हुआ। इसमें प्रमुख भूमिकाओं में चन्द्रहास तिवारी, प्रीति झा, तारिक दाद, ऐश्वर्या खरे थे। एवं इसका निर्देशन तारिक दाद ने किया।

राजीव वर्मा का 'छवि संवाद'

सिनेमा और टी.वी. के परदे पर पहचान और शोहरत की नयी दुनिया से मेरा सामना हुआ, लेकिन ज़िन्दगी जीने का शऊर तो मुझे रंगमंच ने ही दिया। दुनिया को समग्रता में गहरा देखने का नज़रिया नाटक ने ही बख़्शा। अभिनय की कला ने मनुष्यता का पाठ पढ़ाया और संवेदनाओं का फलक विस्तृत किया। भोपाल में रहकर संस्कृति कर्म की आदर्श परंपरा से भी बहुत कुछ हासिल करने का मौका मिला।

इस भावभीने उद्गार के साथ नए साल की पूर्वसंध्या रंगमंच और फिल्म के मशहूर अभिनेता राजीव वर्मा अपने चाहने वालों से पेश आए। नाट्य समूह रंग विदूषक, सांस्कृतिक पत्रिका कला समय और रंगश्री लिटिल बैले ट्रूप की साझा पहल पर आयोजित व्याख्यानमाला छवि संवाद की नौवीं कड़ी के तहत आयोजित इस आत्मीय प्रसंग में राजीवजी ने अपने कला जीवन के जाने-अनजाने पहलुओं पर रोशनी डाली। व्याख्यान से पूर्व वनमाली सृजन पीठ द्वारा प्रकाशित बहुचर्चित पत्रिका 'रंग संवाद' के नवीन अंक का लोकार्पण राजीव वर्मा के साथ कथाकार संतोष चौबे, रंगकर्मी बंसी कौल, राज्य नाट्य विद्यालय के निदेशक संजय उपाध्याय और पत्रिका के संपादक विनय उपाध्याय ने मिलकर किया। समारोह में वरिष्ठ नाट्य निर्देशक अलखनंदन और रंगकर्मी कमल जैन के प्रति विशेष अभिनंदन और शुभकामनाएँ प्रेषित की गयीं। हाल ही में जिन्हें संगीत नाटक अकादेमी सम्मान की घोषणा की गई है। रंगकर्मी उदय शहाणे ने आयोजन की रूपरेखा पर प्रकाश डाला।

अपने व्याख्यान के दौरान राजीव वर्मा ने कहा कि कई फिल्मों और टी.वी. धारावाहिकों में अनेक किरदार निभाने के बावजूद रंगमंच की चौखट पर मिलने वाले सुख को भुलाया नहीं जा सकता मुंबई में मेरा पैशन शांत नहीं होता। मैं नाटकों को मिस करता हूँ। शायद इसीलिये कि मैं भीतर से नाटक को प्यार करता हूँ। एक सवाल के जवाब में राजीवजी ने कहा कि मैं किसी के दबाव या खराब अनुभव की वजह से मुम्बई नहीं गया, महज एक परिवर्तन और नए अनुभव की तलाश मुझे वहाँ ले गई। लेकिन धीरे-धीरे वहाँ के प्रोफेशन ने मुझे अपना लिया। वर्मा ने बताया कि वे जल्दी ही अपने शहर भोपाल लौटने की तैयारी में हैं, जाहिर है कि नाटक से फिर तार जोड़ने का सिलसिला शुरू होगा। भोपाल के हालिया रंगमंच पर अपनी टिप्पणी में वर्मा ने कहा कि गुणवत्ता पर तो ध्यान देना ही होगा लेकिन उत्साह का स्वागत किया जाना चाहिए। मुझे इस फैलाव से काफ़ी उम्मीदें हैं। मूर्धन्य रंगकर्मी ब.व. कारंत को अपनी पहली पसंद बताते हुए उन्होंने कहा- वे मेरे गुरू तो नहीं रहे पर उनकी शख़्सियत ने मुझे हमेशा बहुत प्रभावित किया।

समारोह के समापन पर हाल ही दिवंगत रंगकर्मी सत्यदेव दुबे को सामूहिक शोकांजलि अर्पित की गई।

कालिया का कथा पाठ

भारत भवन, भोपाल के साहित्य प्रभाग 'वागर्थ' द्वारा आयोजित 'पाठ' श्रृंखला के अन्तर्गत 5 फरवरी को हिन्दी की अग्रणी कथाकार ममता कालिया का रचना पाठ आयोजित किया गया। ममता जी ने 'संस्कृति के दावेदार' कहानी को पाठ के लिए चुना। संस्कृति केन्द्रों में पूँजी के प्रवेश तथा प्रायोजन के द्वारा पूँजीपतियों के वास्तविक उद्देश्य को बेनकाब करती उनकी कहानी ने अपनी सीधी सहज भाषा एवं अनेक मार्मिक घटनाक्रमों के अत्यन्त प्रभावी चित्रण के द्वारा उपस्थित श्रोताओं को प्रभावित किया। स्वागत भारत भवन के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी तरुण भटनागर ने किया।

शब्द शिल्पी सम्मान

युवा साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने तथा वरिष्ठ साहित्यकारों की सुदीर्घ साहित्य साधना का सम्मान करने हेतु आत्मजीवी सांस्कृतिक संस्था अभिनव कला परिषद् की 49वीं वर्षगाँठ के अवसर पर दिनांक 25 जनवरी 2012 को 'अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान समारोह' का आयोजन किया गया। रवींद्र भवन में सम्पन्न हुए इस गरिमामय कार्यक्रम के मुख्य अतिथि नगरीय प्रशासन मंत्री बाबूलाल गौर तथा विशिष्ट अतिथि के रूप में वित्त मंत्री राघवजी उपस्थित थे। अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान से सागर के कवि गीतकार विट्ठल भाई पटेल, भोपाल के गीतकार नरेंद्र दीपक, आगर की मालवी लोक कवयित्री पुखराज पांडे, भोपाल के वन्यविद साहित्यकार डॉ. सुरेंद्र तिवारी, भोपाल के गीतकार दिवाकर वर्मा, कोटा के गीतकार रामेश्वर शर्मा, इन्दौर के व्यंग्यकार जवाहर चौधरी, खण्डवा के ललित निबंधकार गोविन्द कुमार गुंजन, भोपाल की कथाकार डॉ. स्वाति तिवारी एवं भोपाल के समाज सेवी प्रहलाद अग्रवाल को सम्मानित किया गया। सभी रचनाधर्मियों को शॉल श्रीफल, प्रशस्ति पत्र भेंट कर अलंकृत किया गया। अभिनव कला परिषद् के संयोजक डॉ. रामवल्लभ आचार्य ने संस्था की गतिविधियों और अब तक की विकास यात्रा की विस्तार से जानकारी दी। उन्होंने बताया कि 49 वर्षों में संस्था तीन हजार से भी अधिक कलाकारों को प्रस्तुतियों हेतु अवसर दे चुकी है।

उत्सव के आसपास

यादगार

3 फरवरी 2012 कालिदास रंगालय (पटना) में शाम 6.00 बजे मंच पर उदयपुर के कलाकारों द्वारा नाटक 'आधी रात के बाद' का मंचन चल रहा है। नेपथ्य में हम विहान ग्रुप भोपाल के कलाकार, मन में जिज्ञासा, कौतुहल, उत्सुकता एवं थोड़ी ऊहापोह। अगली प्रस्तुति 'धर्मवीर भारती' की सुप्रसिद्ध काव्य रचना 'कनुप्रिया' का नाट्य मंचन। मौका है 27वें पाटलीपुत्र बहुभाषीय नाट्य महोत्सव व रंगमेला का।

2 से 7 फरवरी तक चलने वाले इस नाट्य समारोह की दूसरी शाम जहाँ हम नाट्य मंचन की तैयारी में जुटे हैं। वहीं इस समारोह में हिस्सा लेने पूरे देश से लगभग 35 समूह आये हैं। जिनमें से कुछ ना सिर्फ नाट्य प्रस्तुति बल्कि प्रतियोगिता में भी नामांकित हैं। कनुप्रिया का आज यह चौथा मंचन है किन्तु वहाँ जहाँ 35 और नाटक हिस्सेदारी कर रहे हैं। उदयपुर की प्रस्तुति का समापन और सभी सेट को चैंज करने में जुट गये हैं। समय कम है। लाइट्स स्पॉट बताए गये और संगीतवृन्द अपने वाद्य यंत्रों के साथ व्यवस्थित हो रहा है। मंचन से पहले की उद्घोषणा, सभी इस विचार में कि शो कैसा होगा? हाँ.... मंचन से पहले की एक जायज़ बेचैनी। तभी नेपथ्य से एक आवाज़- ''तुमने मुझे पुकारा था ना, लो मैं आ गयी हूँ और पगडण्डी के कठिनतम मोड़ पर खड़ी होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।'' इस आवाज़ के साथ ही मंच से पर्दा खुलता है एवं कलाकारों का दर्शकों की तालियों के द्वारा सीधे दर्शक दीर्घा से जुड़ाव। पहली कविता- ''ओ पथ के किनारे खड़े छायादार पावन अशोक वृक्ष'' के साथ प्रस्तुति का आगाज़। अब बेचैनी का स्तर कम होते हुए पूरी तरह से कनुप्रिया की तल्लीनता में कहीं खो गया। कनुप्रिया के भाव, मधुर संगीत के एक-एक तार में भीगे और हम कविता दर कविता आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। अब ना कोई दर्शक दीर्घा और ना कोई चिंता। हमारे दिलो दिमाग पर मानो सच में कोई कनुप्रिया ही उतर आयी है। प्रस्तुति का समापन और पर्दे के पीछे फिर मंच एक नये नाटक के लिये तैयार किया जाने लगा। उस मंच की वह ऊर्जा अब भी धमनियों में दौड़ रही है।

हम वेशभूषा बदलकर दर्शक दीर्घा में आते हैं। अब प्रस्तुति टैगोर रचित 'डाकघर' की है। जो ऊर्जा थोड़ी देर पहले तक हम प्रत्यक्ष रूप से मंच से ग्रहण कर रहे थे। वही अब अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर रहे हैं। हम दो दिनों से यहाँ पर हैं, एक उत्सव धर्मी आयोजन जिसमें नुक्कड़ नाटक से लेकर लोक नृत्य तक, नाटक की लोक शैली से लेकर अमूर्त प्रयोग और कविता सभी का समावेश है। टैगोर, धर्मवीर भारती, विजय तेंदुलकर आदि की रचनाओं की 35 प्रस्तुतियाँ और भाषा की विविधता, तभी शायद उस मंच में अद्भुत ऊर्जा थी जिसे हमने महसूसा था। ना सिर्फ नाट्य प्रस्तुति बल्कि रंगमंच और साहित्य पर परिचर्चा का आयोजन जिसमें बिहार के लेखकों एवं पत्रकारों के विचार एवं वाद-संवाद ने भी प्रभावित किया। कला के नये प्रयोग एवं अनुभव साझा हुए। भोपाल में होने वाले रंग आयोजनों में ऐसे रंग मेलों और विचारों के आदान-प्रदान और अंतरसंवाद की कमी खलती है। पूर्व रंग के अंतर्गत उपरोक्त आयोजन भी होने चाहिये। तभी नाट्य समारोह की सार्थकता सिद्ध होगी। ***-एकता गोस्वामी***

औद्योगिक क्रांति में बरकरार है हिन्दी का वजूद : चौबे

''भारतीय समाज हिन्दी प्रधान समाज है, इसका लगभग संपूर्ण कार्य हिन्दी में होता है। इसलिए यह सोचना लाज़मी है कि सूचना तकनीक हिन्दी में भी संभव हो। कम्प्यूटर के क्षेत्र में हिन्दी कभी जिन संकटों से जूझ रही थी। कमोबेश अब वे हालात नहीं हैं। औद्योगिक क्रांति में हिन्दी महती भूमिका निभाती नजर आ रही है''।

ये विचार विज्ञानकर्मी संतोष चौबे ने म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शुभारम्भ अवसर पर व्यक्त किए। एन.आई.टी.टी.टी.आर. के राजीव गांधी सभागार में संस्कृति मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा के मुख्य आतिथ्य में आयोजित इस कार्यक्रम में मूर्धन्य भाषा शास्त्री, विज्ञानकर्मी, शिक्षक एवं विद्यार्थी उपस्थित थे। सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, बिलासपुर के कुलाधिपति और आईसेक्ट के निदेशक श्री संतोष चौबे ने विज्ञान और सूचना तकनीकी युग में हिन्दी की महत्ता और उपयोगिता पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्र में सूचना तकनीक के माध्यम से बदलाव लाया जा सकता है। सूचना तकनीकी के आधुनिक उपकरणों के प्रवेश और प्रशिक्षित व्यक्तियों की ज़रूरत को देखते हुए यह विचारणीय मुद्दा है कि सूचना तकनीक का विस्तार कैसे हो। राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षण प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान भोपाल द्वारा आयोजित इस समारोह में तकनीकी विज्ञान लेखक रविशंकर श्रीवास्तव ने लेखन के क्षेत्र में सोशल नेटवर्किंग साइट्स तथा मोबाइल के उपयोग, उनकी क्षमता और सीमाओं के बारे में बताया। श्री चौबे के व्याख्यान में तकनीकी सहयोग आईसेक्ट के कम्प्यूटर प्राध्यापक डॉ. अनुराग सीठा ने किया। इस अवसर पर भोपाल के विज्ञानकर्मी, साहित्यकार, संस्कृति चिंतक और विभिन्न महाविद्यालयों के तकनीकी छात्र बड़ी संख्या में उपस्थित थे।

राग-रंग में भीगा सालगिरह का उत्सव

भारत भवन ने देश में ही नहीं विदेशों में भी अपनी पहचान बनाई है। यहाँ प्रस्तुति देना किसी भी कलाकार का स्वप्न होता है। जगदीश स्वामीनाथन, ब.व. कारंत, अशोक वाजपेयी, दिलीप चित्रे, पं. ओमप्रकाश चौरसिया जैसे देश के शीर्षस्थ कलाधर्मियों की कर्मभूमि रहा भारत भवन अपने गौरवशाली अतीत की स्मृतियाँ आज भी साझा करता हुआ दिखाई देता है। तीस वर्षों का समय जैसे उसकी मुट्ठियों में बंद हैं। अनेक उतार-चढ़ावों के बाद भी यह नयी संभावनाओं के प्रति आश्वस्त है। यद्यपि समय और परिवेश बदला है फिर भी उदीयमान रचनाधर्मियों से अपेक्षाएँ और उम्मीदें बराबर जगी हुई हैं।

देखा जाए तो भारत भवन अपनी हर वर्षगाँठ पर और युवा होता जा रहा है। 13 फरवरी से 19 फरवरी तक हुए विभिन्न सांस्कृतिक साहित्यिक कार्यक्रमों के इस समारोह में नृत्य, कविता, संगीत सभाओं व गोष्ठियों का आयोजन किया गया। स्थापना दिवस समारोह का शुभारंभ करते हुए संस्कृति मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा ने पुनः घोषणा करते हुए कहा कि- संस्कृति का बजट बढ़ाया जाएगा। उन्होंने रंगमण्डल को शुरू करने की पुनः घोषणा की। शुभारंभ अवसर पर ज्योति भट्ट की छायाकृतियों, स्व. राममनोहर सिन्हा की कलाकृतियों तथा मुखौटा प्रदर्शनी का भी उद्घाटन किया गया। समारोह की सांस्कृतिक संध्याओं का आरंभ तालमणि पंडित सुरेश तलवलकर द्वारा परिकल्पित 'तालयात्रा' से हुआ। इसकी शुरुआत कृष्ण वंदना ''कृष्णाय वासुदेवाय नमः''.... इस बंदिश पर कथक की भावपूर्ण प्रस्तुत से हुई। कथक की लालित्य भरी भंगिमाओं के साथ सितार, वॉयलिन, बाँसुरी, पखावज, मटकी। अफ्रीका के वाद्य जेंबे और स्पेन के करखोन इत्यादि वाद्यों का जब समवेत स्वर शुरु हुआ तो श्रोता रस विभोर हो गए। पं. तलवलकर का कहना है कि तालयात्रा गायन-वादन और नृत्य की कल्पनाशील त्रिवेणी है। कृष्ण लीला की अन्य रचनाओं पर कथक व गायन की जुगलबंदी के पश्चात् समापन में समस्त वाद्यों और कथक की जुगलबंदी 'तिश्र' की प्रस्तुति ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। 'ताल यात्रा' अपनी अविस्मरणीय छाप छोड़ने में सफल रही।

समारोह की दूसरी शाम बंगश घराने के युवा उत्तराधिकारी और प्रख्यात सरोद वादक उस्ताद अमजद अली ख़ाँ के सुपुत्र अमान अली ख़ाँ और अयान अली ख़ाँ ने सरोद की जुगलबंदी पेश की। आत्मविश्वास से भरे दोनों प्रतिभाशाली वादकों ने प्रस्तुति का आरंभ राग 'झिंझोटी' से किया। यह राग उनके वालिद को विशेष प्रिय है। अपनी ग़ज़ब की तैयारी दिखाते हुए झिंझोटी में लंबा आलाप लिया। अपनी कल्पनाशील आलापचारी से उन्होंने राग का भावपूर्ण रूप रचा। जोड़ झाला बजाने के पश्चात् विलंबित लय में झपताल पर तंत्रकारी के नायाब नमूने पेश कर अपनी संगीत साधना का परिचय देते हुए द्रुत तीनताल से झिंझोटी राग का समापन किया। कार्यक्रम का समापन रवींद्रनाथ ठाकुर की रचना पर आधारित लोकधुन से किया। तबले पर उनका बखूबी साथ दिया सत्यजीत तलवलकर ने। समारोह की तीसरी संध्या भारत भवन का अंतरंग सभागार

गुंजायमान हो उठा लब्ध प्रतिष्ठ उपशास्त्रीय गायिका पूर्णिमा चौधरी के गायन से। उनके गायन में ठेठ बनारस की खुशबू रची बसी थी। उन्होंने ठुमरी और दादरा के विविध रूप सुना कर उपशास्त्रीय गायन की विविधता और लोकरंजकता का अनुभव कराया। उन्होंने गायन की शुरुआत राग मिश्र खमाज में ठुमरी 'ध्यान लागो मोहे तोरो बांके साँवरिया...' से की। 'डगर बीच कैसे चलूँ...' दादरा में बंदिश पेश कर श्रोताओं को आल्हादित कर दिया। उन्होंने दो भिन्न रागों अडाणा और बहार का मिश्रण कर राग अडाणा बहार में टप्पा सुनाया। राग पीलू में ठुमरी 'पीकी बोली बोल....' और दादरा 'हमें न भावै यारी' की रस भीनी प्रस्तुति से उपशास्त्रीय गायन का माधुर्य और अल्हड़ता बिखेरी। अंत में चैती और होरी के प्रकार सुनाकर उपशास्त्रीयता का वैभव दिखाते हुए अपने स्वरसिद्ध गायन का लोहा मनवाया। तबले पर विनोद लेले, हारमोनियम पर विनय मिश्रा ने उत्कृष्ट संगत की।

चौथी शाम हिन्दी उर्दू के कविता पाठ के नाम रही। इस दो-आबी साहित्यिक आयोजन में कुल आठ कविगण आमंत्रित थे। किन्तु चार ही आ सके। हिन्दी के कुमार अनुपम और दिनेश कुमार शुक्ल तथा उर्दू के आलम ख़ुर्शीद और अमीर इमाम ने अपनी रचनाओं का पाठ किया।

समारोह की पाँचवी शाम ओडिसी नृत्य का सौंदर्य अवतरित हुआ। भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में अपनी खास पहचान रखने वाले ओडिसी में नृत्यांगनाएँ दैवी प्रतिमाओं सी लगती हैं। प्रख्यात नृत्य गुरू पद्म विभूषण केलूचरण महापात्र की सुशिष्या एरं ख्यात ओडिसी नृत्यांगना माधवी मुद्‌गल एवं उनकी सहयोगी नृत्यांगनाओं ने ओडिसी की अत्यंत रंजक प्रस्तुति दी। कार्यक्रम का शुभारंभ रंगस्तुति से हुआ। भारतीय नृत्य कला के प्रमुख ग्रंथ अभिनय दर्पण में वर्णित श्लोकों पर आधारित इस स्तुति के माध्यम से भाव, रस का रंगमंच के अधिष्ठाता देवी-देवताओं का आवाहन किया। उनकी अगली प्रस्तुति महाकवि कालिदास की रचना कुमार संभवम् के पंचम सर्ग पर आधारित थी। माधवी मुद्‌गल तथा सहयोगी नृत्यांगनाओं ने पार्वतीजी द्वारा कठोर तपस्या करने के बाद भगवान शिव को वर के रूप में प्राप्त करने का कथानक नृत्य में प्रस्तुत किया। मदन द्वारा शिव की तपस्या को कामबाण चलाकर भंग करने तथा शिवजी द्वारा तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को भस्म किये जाने का वर्णन नृत्य की भाव-भंगिमाओं से अभिव्यक्त हुआ। अंतिम प्रस्तुति रही कालिदास की ही कालजयी रचना 'ऋतुसंहार' पर आधारित नृत्य प्रस्तुति। जिसमें वसंत का मनमोहक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। माधवी मुद्‌गल द्वारा परिकल्पित इन नृत्य संरचनाओं में संगीत निर्देशन मधुप मुद्‌गल का था। गायन रवि जोशी एवं सावनी मुद्‌गल ने किया।

छठी संध्या शास्त्रीय गायक पं. उल्हास कशालकर के गायन से समृद्ध हुई। जयपुर, ग्वालियर व आगरा घराने से जुड़े पं. उल्हास कशालकर ने गायन की शुरुआत राग श्री में विलम्बित तिलवाड़ा ताल में निबद्ध 'वारी जाऊँ रे साँवरिया...'' बंदिश से की। छोटा ख़याल तीन ताल में प्रस्तुत किया। मौसम के अनुसार उन्होंने राग बसंत का चयन कर उसमें निबद्ध तराना सुनाकर श्रोताओं को अभिभूत कर दिया। संगीत नाटक अकादेमी अवॉर्ड व पद्मश्री से सम्मानित पं. उल्हास कशालकर ने अपने गायन में स्वर, ताल, भाव पर सधा हुआ अधिकार दिखाया। उनके साथ तबले पर संगत कर रहे थे प्रख्यात तालवाद्य गुरु सुरेश तलवलकर। सारंगी पर बख़ूबी साथ निभाया, भोपाल के युवा सारंगी वादक सरवर हुसैन ने।

सात दिवसीय स्थापना दिवस समारोह की अंतिम प्रस्तुति थी वामन केन्द्रे द्वारा निर्देशित हिन्दी नाटक 'मोहे पिया'। मूल संस्कृत में महासवि भास द्वारा रचित 'मध्यम व्यायोग' नाटक के हिन्दी रुपांतरण को दर्शकों ने भरपूर सराहा। महाभारत कालीन कथ्य वाले इस नाटक में भीम, हिडिम्बा और उनके पुत्र घटोत्कच की कथा है। भीम लंबे बिछोह के बाद अपनी पत्नी और पुत्र से मिलते हैं।

प्रा. वामन केंद्रे ने अपने निर्देशकीय कौशल से इस नाटक को बेहद दर्शनीय बनाया है। सफेद रंग के साइक्लोरामा का प्रयोग कर प्रकाश के रंगों का खूबसूरत इंद्रधनुष रचा है। भीम और घटोत्कच के बीच युद्ध और द्वंद्व के दृश्यों को आंगिक गतियों ने जीवंत करने का पूरा प्रयास किया। वेशभूषा, प्रकाश परिकल्पना और संगीत भी नाटक को आकर्षक बनाते हैं। सभी अभिनेताओं से अपने अपने चरित्रों के साथ न्याय करते हुए अपनी छाप छोड़ी।

'इन सर्च ऑफ हेप्पीनेस'

भारतीय दर्शन और अध्यात्म में आनंद सर्वोपरि तत्व है। सारे विकारों के तिरोहित हो जाने का महाभाव है आनंद। भारत की समस्त संस्कृति, कलाएँ आनंद की ही खोज में निःसृत हुई, विकासमान हुई। भोपाल की चित्रकार क्षमा कुलश्रेष्ठ आनंद के इसी महाभाव को तलाशती और अभिव्यक्त करती हैं। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादमी में लगी उनकी प्रदर्शनी का विषय था 'इन सर्च ऑफ हेप्पीनेस'। उन्होंने अपने चित्रों के माध्यम में प्रकृति का आल्हाद रचा है। प्राकृतिक सौंदर्य को वे सृष्टि का महानतम आनंद मानती हैं। प्रकृति में बिखरे तमाम रंगों को उन्होंने अपने कैनवास पर बहुत आत्मीयता से जगह दी है। उन्होंने लगभग सवा साल में 'खुशी' के इन साठ चित्रों का सृजन किया है। इन चित्रों में प्रकृति का उल्लास है, श्रृंगार है अतः ज़ाहिर है कि ये चित्र सकारात्मक ऊर्जा से भरपूर हैं। इन्हें देखकर अपूर्व प्रसन्नता मिलीत है और हममें धीरे-धीरे निर्विकार भाव आने लगता है। क्षमा ने 'रेड माउंटेन', 'ग्रीन फॉरेस्ट', 'ग्रोथ ऑफ हेप्पीनेस', 'टेंपल ऑफ जॉय' आदि पेंटिंग एक्रेलिक माध्यम से बनाई हैं। अपनी प्रसिद्ध कृति 'कल्पवृक्ष' के नेपथ्य में उन्होंने चटख केसरिया रंग का प्रयोग किया है जो आनंद, नवजीवन, आध्यात्मिक चेतना व सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण बिम्बों का सार्थक सृजन करता है।

क्षमा का चटख रंगों के प्रति जो आग्रह है वह आनंद और उल्लास की अभिव्यक्ति की अनिवार्यता बन जाता है। विशेष बात इन चित्रों की यह है कि सारे चित्र प्रकृति का और उसके सौंदर्य का पुनर्निर्माण हैं। अर्थात् यह अनुकरण शैली के नहीं बल्कि नवसृजन शैली के चित्र हैं। चित्रकार ने अपनी कल्पनाओं से सारे दृश्यों को नवीन रूपों में अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार ये चित्र प्रकृति की हूबहू नकल न होकर अपना मौलिक दर्शन हैं। गाढ़े नारंगी रंग से बनी कस्तूरी नामक पेंटिंग में हिरण के कस्तूरी पाने की चाह में भटकने की प्रतीकात्मकता है मनुष्य के साथ भी खुशी का यही संबंध है। खुशी पाने की चाह में भटकते मनुष्य का अंतर्द्वंद्व भी इस चित्र में झलकता है। क्षमा ने भगवान गणेश के भी कई चित्र बनाए हैं। 'कल्पवृक्ष' पेंटिंग की सार्थकता के बारे में बताते हुए क्षमा कहती हैं कि यह पेंटिंग एक अस्पताल में लगी है और वहाँ के मरीज उस पर मन्नत का धागा बाँध कर जाते हैं। आनंद और प्रकृति को कैनवास में समेटने का क्षमा कुलश्रेष्ठ का प्रयास निश्चय ही दर्शकों को खुशी से सराबोर कर गया होगा।

'पाठ' में कथा-कविता

ललित कलाओं के लिए समर्पित संस्था 'स्पंदन' ने सतत रूप से आयोजित साहित्यिक कार्यक्रमों में कहानी, कविता उपन्यास आदि विधाओं के रचनाकारों को आमंत्रित कर अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की है। पाठ के इन श्रृंखलाबद्ध कार्यक्रमों में मौजूदा समय की तस्वीर पेश करते हुए चिंताएँ और सवाल संवेदनाओं को झकझोरते हैं और एक सार्थक विमर्श भी छेड़ते हैं। बदलते मूल्यों और मानवीय रिश्तों के आधुनिकतम समय में साहित्य की उपादेयता भी 'पाठ' के कार्यक्रमों से तय होती रही है। वंदना राग के कहानी संग्रह यूटोपिया पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर वंदना राग ने अपनी कहानी 'मोनिका फिर याद आई' का पाठ भी किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता उपन्यास मंज़ूर एहतेशाम ने की। आरंभ में संस्था की संयोजक कथाकार उर्मिला शिरीष ने वंदना राग का परिचय दिया। उपस्थित साहित्यकारों ने अपनी टिप्पणियाँ प्रस्तुत कर संगोष्ठी को सार्थक बनाने का प्रयास किया।

'जब तक आप इंसान हैं... मैं हूँ/बंधी नहीं हूँ/ मंगलसूत्र से मैं.../' 'मंगलसूत्र' कविता का पाठ करते हुए स्त्री के जीवन को रेखांकित कर रहे थे 'स्पंदन' पाठ श्रंखला में आमंत्रित कवि लीलाधर मंडलोई। नए वर्ष की पूर्व संध्या पर आयोजित कविता पाठ में लीलाधर मंडलोई ने चुनिंदा कविताओं का पाठ किया। 'बचपन से अभी तक भूल न सका वह सुख... 'कुछ और अधिक मनुष्य' कविता की पंक्ति-यात्राओं में पिता अपने साथ रखते थे/ बिलानागा/एक लोटा/ सुआपी और लाठी... और 'शिकस्तों के बीच' कविता पंक्तियाँ 'दिलचस्प थी उनकी दास्ताँ कि ज़िंदगी में उनकी, स्याह रातें न थीं जैसी कविताओं का पाठ कर श्रोताओं को आत्मविभोर कर दिया। इसके साथ ही अन्य कविताओं अपनों के बीच, रिश्तों की नमी, नदी सूत, बच्चों का भविष्य, कबाड़खाना, अधूरा कालाहांडी, सोचना, क्षमा याचना काला पानी इत्यादि कविताओं का भावपूर्ण पाठ किया।

दुष्यंत संग्रहालय में आयोजित कहानी पाठ कार्यक्रम में लंदन से पधारी कथाकार दिव्या माथुर ने 'पंगा' कहानी का पाठ किया। कहानी में ट्रेफिक जाम में फँसी एक महिला कार चालक की कहानी है। भयंकर भीड़ भरे माहौल में उसके विचार और कल्पनाएँ भी तदनुरूप हो जाते हैं। वह गाड़ियों के रंग उनके नंबर प्लेटों से उनके चालकों की कल्पनाएँ करती है। अंततः भीड़ से उसको सुरक्षित निकालने में कुछ अश्वेत लोग मदद करते हैं। यह कहानी नस्लभेद के विरुद्ध बढ़ती जनसंख्या, सड़कों पर भीड़ और प्रदूषण इनके खिलाफ़ भी अपनी बात कहती है। मायाराम सुरजन भवन में आयोजित रचनापाठ में ज़किया ज़ुबैरी ने कहानी 'मन की साँकल' का पाठ किया।

मंजूषा के मनोहारी माउंटेन्स

नागालैंड के पर्वतों की विहंगम वादियाँ, पहाड़ों के रुखसारों पर छाया कोहरा, बादलों की चादर में से सिर उठाए पहाड़ों की चोटियाँ, घाटियों में फूलों से भरे हुए बगीचे और नीला आसमान... ऐसे ही सुरम्य प्रकृति के दर्शनों की साक्षी बनीं अलियांस फ्रांसिस की भोपाल कला दीर्घा। अवसर था ख्यात चित्रकार तथा कला व्याख्याता डॉ. मंजूषा गांगुली की चित्र प्रदर्शनी का।

'सिल्की माउंटेन्स' नामक इस प्रदर्शनी में उन्होंने नागालैंड की पर्वत श्रृंखलाओं के मनोरम दृश्य रचे। उन्होंने 12 बारह पेंटिंग्स और अठारह कोलाजफ्रेम अपनी प्रदर्शनी में शामिल किए। कोलाज फ्रेम में मंजूषा ने टिश्यू पेपर का प्रयोग किया। टिश्यू पेपर के अर्धपारदर्शी माध्यम से बनाई गई पर्वत श्रृंखलाएँ सौंदर्य का आश्चर्य लोक रचती हैं। पर्वतों का एक दूसरे के भीतर से दिखाई देने का पारदर्शी प्रभाव पर्वत श्रृंखलाओं के असीम के दर्शन कराता है। मंजूषा बताती हैं कि ऑईल पेंट माध्यम में पेंटिंग करते रहने के बाद उन्हें लगा कि कुछ नया और आविष्कारपूर्ण काम करना चाहिए इसी बेचैनी में उन्होंने कार्बन पेपर्स से प्रयोग शुरू किए। विभिन्न रंगों के कार्बन पेपर से कोलाज चित्र की शैली विकसित की। इस शैली का पहला चित्र नीले कार्बन से गहरी नीली रात रची थी। उसमें जिसमें रहस्यमयी रात का आभास था। नीला रंग उन्हें विशेष प्रिय है। इसी प्रकार कुछ और तरह के कागज़ों को फाड़कर नये-नये प्रयोग किए। और प्रकृति के दृश्यों का आभास-रूप रचा। सिल्की माउंटेन्स की सारी पेंटिंग्स नागालैंड में लगे 10 दिनों के कैम्प का परिणाम हैं। इनमें वहाँ के जनजीवन की यादें और पर्यावरण की अनुभूतियाँ हैं। उन्होंने पेंटिंग्स में नाइट स्केप्स को दर्शाया है। दिन में धुंधले और चमकदार दीखने वाले पहाड़ रात में कैसे शांत और गहरे रंगों में समाए होते हैं, इस अनुभूति को मंजूषा ने अपनी पेंटिंग्स में उतारा है। वे कहती हैं- ''रात का समय दिखाने के लिए अक्सर कलाकार काले रंग का इस्तेमाल करते हैं जबकि मैंने रात में भी रंगों को देखा है। मेरे नाईट स्केप में नीले बैंगनी और गुलाबी रंग दिखाई देंगे।'' चूंकि मंजूषा जी कवयित्री भी हैं अतः उनके कोलाज और पेंटिंग्स में कविता का रूपाकार और गहन सौंदर्यबोध स्पष्टतः दीखता है। उन्हें हाल ही में 14वें इंटरनेशनल आर्ट फेस्टीवल में 'कला कौस्तुभ' सम्मान मिला है।

'रोटी नहीं सवाल नया'

सुपरिचित कवि अनिल गोयल के नवीन ग़ज़ल संग्रह 'रोटी नहीं सवाल नया' का लोकार्पण हुआ। गंज बासौदा के 'संजय गाँधी स्मृति महाविद्यालय' में संयोजित दो दिवसीय शोध संगोष्ठी में हुए इस विमोचन समारोह में 'उद्‌भावना' (दिल्ली) के सम्पादक अजय कुमार, आलोचक रामप्रकाश त्रिपाठी, वरिष्ठ कवि नरेन्द्र जैन, राजेंद्र शर्मा, मणिमोहन मेहता आदि ने संग्रह की तेजस्विता को सराहते हुए कहा कि 'रोटी नहीं, सवाल नया' पढ़ते हुए उस आम आदमी के हालातों से रूबरू होना होता है जो लोकतंत्र के नाम पर विद्रूप राजनीति का अभिशाप झेलने को विवश है।

गोयल की नई किताब

अनिल गोयल ने बतौर आत्मकथ्य अपनी ग़ज़ल के ये शेर कहे- 'है मन मौज अपनी, है बंदिश बहर की/ कथा है, व्यथा है शहर दर शहर की', ... 'सुनीं, देखी, भोगी हैं ये यातनाएं/ग़ज़ल हैं ये मेरे बराबर उमर की', 'जो कभी था बाप के भी बाप का परिचय/सिर्फ़ उतना सा ही तो है आपका परिचय सिद्ध कर दूँगा कि घुँघरू हूँ मैं अलबेला/मुझसे करवा दीजिए बस थाप का परिचय'। श्री गोयल ने अपनी सृजन यात्रा के बारे में बताया कि 'बचपन में रामायण पाठ में शामिल होते हुए 'बहर' और 'तुक' की समझ आई। इसी के चलते दोहे और चौपाई की शक्ल में किसी भी विषय पर लिखने की आदत बनी।' अमिताभ बच्चन पर लिखी उनकी चार कविताओं ने श्रोताओं की खूब वाह-वाही पाई। काबिले गौर है कि गोयल द्वारा माँ और बेटी की कविताओं पर आधारित पोस्टर प्रदर्शनी उन्हें देशभर में अपार यश और ख्याति प्रदान कर चुकी है।

सुर, लय और ताल की गमक

युवा संगीत साधकों की प्रतिभा को अवसर देने के लिए भारत भवन के संगीत केंद्र अनहद द्वारा स्थापित संगीत सभा 'आरंभ' में उदीयमान गायकों-वादकों का सांगीतिक आरंभ श्रोताओं को चमत्कृत कर देता है।

एक ओर जहाँ ये संगीत साधक नैसर्गिक प्रतिभा से सम्पन्न लगते हैं, वहीं ये नन्हीं उम्र से ही गुरुजनों के सानिध्य में अथक रियाज़ भी कर रहे हैं। लिहाज़ा सुरों पर इनका अधिकार स्पष्ट दिखता है तो भावों को साधने का उपक्रम भी। ऐसे ही मंत्रमुग्ध कर देने वाले स्वरानुभव से लबरेज़ रही आरंभ की दो दिवसीय संगीत संध्याएँ। पहली शाम का आगाज़ ध्रुपद की जुगलबंदी से हुआ। गुंदेचा बंधुओं की युवा शिष्याएँ आस्था त्रिपाठी और रूपाली जैन ने ध्रुपद की नवीन पीढ़ी की संभावनाशील आमद दर्ज कराई। जाड़ों की सर्द शाम भारत भवन में दोनों गायिकाओं ने राग चंद्रकौंस के गंभीर आलाप से सुरों की महफ़िल में अलाव जलाया। गुरुजनों से प्राप्त ज्ञान का बखूबी परिचय देते हुए श्रोताओं को अपनी संभावनाओं से अवगत कराया। राग हिंडौल बसंत में निबद्ध बादल आयो बसंत, बादशाह मदन...... बंदिश ताल चौताल में प्रस्तुत की। पखावज पर संगत ज्ञानेश्वर देशमुख ने की।

दूसरी सभा में सितार और सरोद की जुगलबंदी ने कार्यक्रम को ऊँचाईयाँ दीं। दिल्ली से पधारे युवा बंधुओं लक्ष्यमोहन गुप्त और आयुषमोहन गुप्त ने सितार और सरोद पर जब अपनी साधना से पकती हुई उंगलियों का जादू छेड़ा तो सारा सभागार मुक्तकंठ से 'वाह' किए बिना न रह सका। उनके वादन में सितार और सरोद का अद्‌भुत सामंजस्य देखने को मिला। वे पिछले पाँच सालों से गुंदेचा बंधुओं से विशेष प्रशिक्षण ले रहे हैं। भारत भवन में संगीत प्रस्तुति का यह उनका पहला अवसर था। तबले पर शहर के मशहूर तबलावादक सलीम अल्लाह वाले ने सुयोग्य संगत की। दूसरे और अंतिम दिन की सभाओं में सबसे पहले बेंगलूरु के किशोर वय बाँसुरी वादक एस. आकाश ने अपने बाँसुरी वादन से पूरे सभागार को मंत्रमुग्ध किया। वे 4 वर्ष की उम्र से बाँसुरी का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। कर्नाटक संगीत का गहन प्रशिक्षण लेते हुए पं. रोनू मजूमदार से भी बाँसुरी की शिक्षा ले रहे हैं। जहाँ एक ओर कैशोर्य का भोलापन, अल्हड़पन खिलखिला रहा था वहीं दूसरी ओर साधना का तेज भी दमक रहा था। जैसे ही उन्होंने राग दुर्गा की प्रस्तुति आरंभ करते हुए आलाप का मंगलाचरण किया। गायकी अंग से भरपूर उनका बाँसुरी वादन अत्यंत भावप्रवण और लालित्य भरा था। उनके साथ तबले पर भोपाल के ही युवा तबलावादक रामेन्द्र सिंह सोलंकी ने बाँसुरी के अनुरूप ही संगत की। समारोह की अंतिम सभा में कोलकाता के युवा शास्त्रीय गायक समीहन कशालकर ने शिरकत की। उन्होंने गायन की शुरुआत राग जयजयवंती से की। विलंबित तीन ताल में निबद्ध बड़ा ख्याल ऐ री माई ऐसे.... प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् द्रुत तीन ताल में नटवर बन बन नाचन लागो रे' पेश किया। तबले का साथ सलीम अल्लाह वाले ने निभाया और और हारमोनियम पर संगत की ज़मीर हुसैन खान ने। आजकी युवा पीढ़ी का संगीत के प्रति समर्पण भाव और गहरी निष्ठा दर्शाने में यह समारोह सफल सिद्ध हुआ। इसने यह आश्वस्ति भी जगाई कि कला और संस्कृति के ध्वजावाहक निरंतर गतिमान हैं।

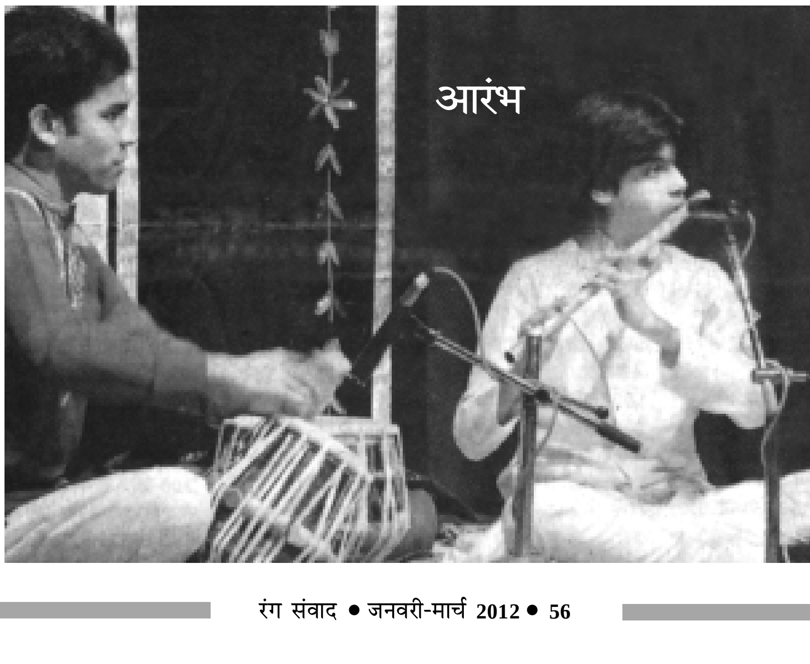

काशीनाथ सिंह का रचना पाठ

नरभक्षी राजा चाहे कितना भयानक हो दुर्वध्य नहीं है, उसका वध संभव है। चर्चित उपन्यास 'काशी का अस्सी' के एक अंश को सुनाते हुए साहित्य अकादमी से सम्मानित हुए हिन्दी कथाकार काशीनाथ सिंह ने कहा कि अपना अलग रास्ता बनाना सार्थक रचनाशीलता की पहचान है। गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय दिल्ली के अंग्रेजी विभाग के युवा विद्यार्थियों को अपनी रचना प्रक्रिया से सम्बंधित रोचक तथ्यों को बताते हुए उन्होंने कहा कि यदि मेरे लेखन में पाठक को कुछ नया और मौलिक नहीं मिलता तो भला उसे कोई क्यों पढ़ेगा?

इससे पहले विश्वविद्यालय के कुल सचिव डॉ. बी.पी.जोशी ने कहा कि 'लेखक से मिलिए' श्रृंखला का यह आयोजन ऐसे अवसर पर हो रहा है जब साहित्य अकादमी से सम्मानित होकर काशीनाथ जी हमारे बीच आये हैं। युवा आलोचक और हिन्दू कालेज के सहा. आचार्य डॉ. पल्लव ने कहा कि विचारधारा से जुड़े लेखकों पर आरोप लगता है कि वे बहुधा प्रयोगशील नहीं हो पाते, लेकिन काशीनाथ सिंह का लेखन इस बात का उदाहरण है कि एक लेखक किस तरह लगातार अपना विकास कर साहित्य को श्रेष्ठ देता है। आयोजन की शुरुआत में फ़ैज़, मख़दूम और पाब्लो नेरूदा की नज़्मों-कविताओं की प्रस्तुति दी गई।

'धरती की धड़कन'

दमोह में प्रसिद्ध छायाकार आभा भारती के प्रथम काव्य संग्रह 'धरती की धड़कन से' का लोकार्पण 'पहल' के संपादक-कथाकार ज्ञानरंजन ने किया। सद्‌भाव परिवार के सौजन्य से संयोजक संतोष भारती द्वारा आयोजित यह लोकार्पण कार्यक्रम, दर्शनशास्त्र के प्रकांड विद्वान, भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक सदस्य, ज्ञानोदय के प्रथम संपादक डॉ. महेन्द्र कुमार जैन ''न्यायाचार्य'' को समर्पित था। मई 2011-2012 उनका जन्मशती वर्ष है। कवयित्री आभा भारती उनकी छोटी पुत्री हैं। डॉ. जैन के व्यक्तित्व-कृतित्व पर म.प्र. संस्कृत अकादमी के पूर्व निदेशक प्रो. भागचंद जैन जी ने विस्तृत प्रकाश डाला। महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा उनके कृतित्व को रेखांकित करती हुई पुस्तिका विमोचन भी किया।

''धरती की धड़कन से'' के विषय में ज्ञानरंजन ने दो टूक अपनी बात रखते हुए कहा कि- प्रत्येक कविता के बगल का पन्ना कोरा है। आभा भारती अपने अगले संग्रह में भाषा व शिल्प पर ध्यान देंगी। वे पर्यावरण एक्टिविस्ट अधिक प्रतीत होती हैं, क्योंकि पुस्तक का मूलस्वर प्रकृति-प्रेम से जुड़ा है। समीक्षाकार डॉ. रमोला हेनरी व गफ़ूर तायर थे। कार्यक्रम के अध्यक्ष दमोह के वरिष्ठ साहित्यकार सत्यमोहन वर्मा ने कहा कि पुस्तक की छोटी कविताएं अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली हैं। कार्यक्रम का सफल संचालन व्यंग्यकार अजित श्रीवास्तव ने किया। आभार नरेन्द्र दुबे ने माना।

कथक पर विमर्श

मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक संस्था श्रुतिमुद्रा सांस्कृतिक समिति की ओर से नई दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर के एनेक्सी सभागार में 17-18 मार्च दो दिवसीय कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। कथक के चारों घरानों पर केंद्रित इस 'कथक चतुष्टय' महोत्सव में आख्यान प्रदर्शन द्वारा कलाकारों ने अपने अपने घराने की विशेषताओं का बखान किया। प्रथम सभा में रायगढ़ घराने के गुरू कार्तिक राम एवं गुरू रामलाल की शिष्या सुश्री अल्पना वाजपेयी ने बताया कि चक्रधर महाराज के समय नृतकों को गाना, बजाना, भाव व नृत्य चारों विधाएँ को सिखाई जाती थीं।

द्वितीय प्रस्तुति में लखनऊ घराने का प्रतिनिधित्व कथकाचार्य मुन्नालाल शुक्ला, गुरु जयकिशन महाराज और श्री दीपक महाराज ने किया। शुरुआत में पं. मुन्नालाल शुक्ला ने लखनऊ घराने की जानकारी प्रदान की। दीपक महाराज ने तीनताल में लखनऊ घराने का कथक नृत्य ओजस्विता से प्रस्तुत किया। ''वरणत श्याम सुन्दर'' रचना द्वारा कृष्ण के कई रूपों को प्रदर्शित किया। महाराज बिंदादीन की ठुमरी ''तोरी मैं ना मानूँगी'' पर उन्होंने नायिका के भावों को अद्‌भुत तरीके से प्रस्तुत किया। अपनी प्रस्तुति में दीपक महाराज ने भावों का संचालन बख़ूबी किया। तबले पर गुरू जयकिशन महाराज, सारंगी पर श्री घनश्याम सिसौदिया और गायन में श्री संतोष मिश्र ने अच्छा साथ निभाया।

'कथक चतुष्टय' की दूसरी सभा सुबह से आयोजित थी जिसमें जयपुर घराने के बारे में हरीश गंगानी ने विस्तृत चर्चा की। उन्होंने कहा कि गुरु ही अपनी साधना से घराने को आगे बढ़ाते हैं। हरीश गंगानी ने बताया कि जयपुर घराने की यह विशेषता है कि नृत्य का प्रारंभ शिव या गणेश स्तुति से ही किया जाता है। तत्पश्चात् तीन ताल में उन्होंने थाट, आमद, आमद परन, पं. राजेन्द्र गंगानी कृत तिहाईयों को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किया। तबले पर मोहित गंगानी, पखावज पर आशीष एवं गायन पर विजय परिहार ने अच्छी संगत की। बनारस घराने का प्रतिनिधित्व मुम्बई से आई सुश्री जयंतीमाला ने किया। 'कथक क्वीन' आदरणीय सितारा देवी की पुत्री सुश्री जयंतीमाला ने बताया कि सात पीढ़ियों की लगातार साधना के बाद ही घराना बनता है। उन्होंने बताया कि बनारस घराना मंदिरों से प्रभावित रहा है। इस शैली में तांडव लास्य का संतुलित समावेश रहता है। इस घराने में ठुमरी, दादरा, चैती, होली भी गाने और नाचने का चलन रहा है। संयोजिका कथक नृत्यांगना शाम्भवी शुक्ला ने धन्यवाद दिया।

'भाषा साँस लेती है'

दरअसल कविता परकाया में प्रवेश होना है। इसमें अनुभववादी या स्वानुभावी होना उतना ज़रूरी नहीं, जितना कि परानुभावी प्रवेश ज़रूरी है। कविता जीवन के छोटे से छोटे क्षण को मूर्त कर देती है।

सुरेश का दूसरा कविता संग्रह

यह बात सुप्रसिद्ध कवि आलोचक राजेश जोशी ने रविवार स्वराज भवन भोपाल में सुप्रसिद्ध युवा कवि कुमार सुरेश के दूसरे कविता संग्रह 'भाषा साँस लेती है' के लोकार्पण अवसर पर बतौर अध्यक्ष कही। हिन्दी मासिक 'समय के साखी' द्वारा आयोजित इस लोकार्पण समारोह में मुख्य अतिथि बतौर उपस्थित कवि नरेन्द्र जैन ने कहा कि सुरेश कवि से ज़्यादा कविता के जीवन के बारे में सोचते हैं और इस तरह वे किसी तरह की आपाधापी और दौड़ में शामिल नज़र नहीं आते हैं। आधार वक्तव्य देते हुए स्वनामधन्य कथाकार कवि संतोष चौबे ने कहा कि भाषा जब साँस लेती है तो आदमी को आदमी बनाती है। प्रकृति खुलकर प्रकट होती है, साथ ही मनुष्य के साथ यात्रा करती है। विदिशा के युवा कवि ब्रज श्रीवास्तव ने कहा कि सुरेश की कविताओं में उपस्थित भाषायी संतुलन नये कवियों को सीख देता है। इस अवसर पर कुमार सुरेश ने 'वसंत में बच्चे', 'मुख्यधारा का आदमी', 'मनुष्य रहता

है नाम के पार', 'अक्स', 'चीज़ें', 'बेहतर की तलाश', 'आवाज़ एक पुल है' सहित कुछ अन्य कविताएँ भी सुनाईं। कार्यक्रम का दूसरा सत्र कविता पाठ पर एकाग्र रहा, जिसमें राजेश जोशी, संतोष चौबे, नरेन्द्र जैन, ओमभारती तथा राजेन्द्र शर्मा ने शिरकत की। इस सत्र का संचालन सुप्रसिद्ध कला समीक्षक रामप्रकाश त्रिपाठी ने किया।

महेन्द्र शर्मा, मनोज जैन 'मधुर', प्रज्ञा रावत, मोहन सगोरिया ने अतिथियों का स्वागत किया। 'समय के साखी' की संपादक डॉ. आरती ने आभार माना। -*वसंत सकरगाए*

धरोहर में 'वसंत विलास'

सर्द हवाओं में हल्की सी तपन का खुशनुमा अहसास, पलाश के फूलों का खिलना और प्रकृति के कण कण में नया उल्लास भर जाना ये सब वसंत ऋतु के आगमन के संकेत हैं। वसंत की ऐसी ही सुखद अनुभूतियों से लबरेज रही ओडिसी नृत्य की प्रस्तुति। अवसर था कीर्ति बैले एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स द्वारा प्रख्यात कोरियोग्राफर व निर्देशक स्व. प्रभात गांगुली की स्मृति में आयोजित 'धरोहर-2012' का। 'वसंत विलास' शीर्षक से ओडिसी नृत्य रचनाओं को भोपाल की वरिष्ठ नृत्यांगना बिन्दु जुनेजा और उनकी होनहार शिष्या कल्याणी फगरे ने प्रस्तुत किया। सृष्टि के नवसृजन के माधुर्य को नृत्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए 'मंगलम् पर्वतराम-पर्वतराम मंगलम्...', कालिदास रचित 'दुमा स पुष्पा सलिलं', 'हरिरिह मुग्ध वधु निकरे....', 'कृष्णात् परम किमपि तत्वं...' जैसी मनमोहक नृत्य प्रस्तुतियाँ दीं। इसी श्रृंखला में कथक की वरिष्ठ नृत्यांगना अल्पना वाजपेयी ने उनकी शिष्या सृष्टि गुप्ता के साथ कथक नृत्य की प्रस्तुति दी। प्रारंभ में ईश वंदना के पश्चात् चंद्र बदनि-मृग नयनी-गजगामिनी-कामिनी बंदिश पेश की। यह राग तोड़ी और एक ताल में निबद्ध थी। अंत में अल्पना ने रायगढ़ घराने के पितृ पुरुष राजा चक्रधर सिंह लिखित ठुमरी पर अभिनय अंग पेश किया तथा 'मोहे रोके कान्हा बिरज के मार्ग...' बंदिश पर नृत्य प्रस्तुत किया।

शहर के वरिष्ठ कोरियोग्राफर चंद्रमाधव बारीक के निर्देशन में मंचित बैले 'माँ' में स्त्री के संघर्ष की दास्तान अभिव्यक्त हुई। बैले में गीत एवं आलेख राजीव लोचन का था, संगीत उमेश धर्मेश, वेशभूषा श्रुतिकीर्ति, प्रकाश परिकल्पना एवं नृत्य संरचना चंद्र माधव बारीक की रही।

'प्रेरणा' के बहाने उपन्यास पर चर्चा

नई दिल्ली स्थित अणुव्रत सभागार में आयोजित लघु उपन्यास विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी में समकालीन आलोचना के शिखर पुरुष डॉ. नामवर सिंह ने भोपाल से अरुण तिवारी के संपादन में प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका ''प्रेरणा'' के लघुउपन्यास अंक, हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'हरिगंधा' तथा पूर्वोत्तर की लोक संस्कृति पर केंद्रित डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह के संपादन में सिलीगुड़ी से छपने वाली मासिक पत्रिका 'आपका तिस्ता हिमालय'; का लोकार्पण किया।

नामवरजी ने कहा कि आप लोगों का काम लिखना है। आप निश्चिंत होकर लिखते रहें, आपकी रचना लम्बी कहानी है या लघु उपन्यास, इसका फैसला आलोचकों को करने दें। रचनाकार को अपनी ऊर्जा लेखन में खर्च करनी चाहिए। उन्होंने कहा कि यह रहस्य तो रचनाकार ही बता सकता है कि कभी कभी वह कम से कम शब्दों में असरदार बात कह जाता है जबकि कभी कभी उसी बात को प्रभावी ढंग से कहने के लिए उसे लम्बी चौड़ी भूमिका की ज़रूरत पड़ती है।

संगोष्ठी का संचालन करते हुए रचनाकार शैलेन्द्र चौहान ने कहा कि वर्तमान उपभोक्तावादी युग में साहित्य आम पाठकों से दूर होते जा रहा है। ऐसे प्रतिकूल माहौल में 'प्रेरणा' तथा 'आपका तिस्ता हिमालय' जैसी सार्थक लघु पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य को जन-जन तक पहुंचाया जा सकता है। वरिष्ठ कथाकार तथा 'लोकायत' के संपादक

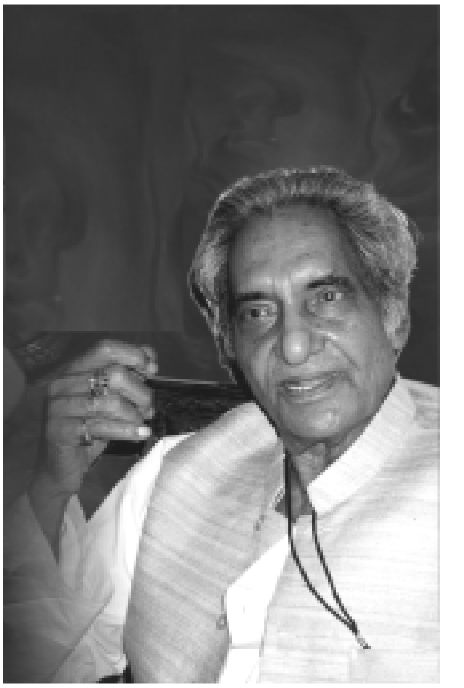

गीत ऋषि नीरज का अभिनंदन

''जो पुण्य करता है वह देवता बन जाता है, जो पाप करता है वह पशु बन जाता है और जो प्रेम करता है वह आदमी बन जाता है'' उत्तर छायावाद के गीतिकाव्य के स्तम्भ और साहित्य की सरस्वती को कवि सम्मेलनों के मंच से प्रवाहित करने वाले लोकप्राण गीतकार-कवि गोपालदास नीरज ने जब इन पंक्तियों को पढ़ा तो हिन्दी भवन का सभागार तालियों से गूंज उठा। हरिवंशराय बच्चन को अपना काव्य गुरु मानने वाले और उनकी परंपरा को जीने वाले पद्मभूषण नीरज कविता में गीतात्मकता और भावपूर्ण पाठ के जबर्दस्त हिमायती हैं। इसीलिए कवि सम्मेलनों के मंच पर उनका होना साहित्य की प्रतिष्ठा होने जैसा है। कविता के मंचों से धीरे धीरे गायब होती कविता और बढ़ती हुई फूहड़ता के दौर में नीरज की कविता अखंड ज्योति की तरह आज भी प्रदीप्त है। श्रोताओं के विशेष आग्रह पर नीरज ने अपने सुनहरे दौर के गीतों को सुनाकर शब्द की गरिमा पुनः सिद्ध की और अपनी भाषा से सबको मंत्रमुग्ध किया। प्रेम, जीवन-दर्शन, संघर्ष-चुनौतियाँ जैसे बुनियादी विषयों पर लिखे ''छिप-छिप अश्रु बहाने वालों...', 'दोस्तों हर पल को जीयो...', 'ज्ञानी हो फिर भी न कर...' गीत और दोहे सुनाकर छंद की कल-कल सरिता प्रवाहित की और काव्य के स्वर्णिम युग को पुनः जीवंत कर दिया।

म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा आयोजित इस सम्मान समारोह कार्यक्रम में संस्कृति मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा ने गीतऋषि नीरज को काव्य कौस्तुभ सम्मान से विभूषित किया। समारोह में नीरज पर केंद्रित पत्रिका 'अंतरा' का विमोचन भी किया गया।

बलराम ने अमेरिकी लेखिका हेलेन हैंफ के द्वारा इंग्लैण्ड स्थित मार्क एण्ड कं. के मालिक फ्रैंक ड्वेल को लिखे 81 पत्रों के माध्यम से सृजित एक लघुउपन्यास का रागात्मक वर्णन किया। बलराम ने 'प्रेरणा' के वर्तमान अंक में प्रकाशित राजेन्द्र लहरिया के 'एक डायरी : ला दिनांक' तथा डॉ. श्याम सखा श्याम के 'कोई फायदा नहीं' नामक लघु उपन्यासों के कथ्य एवं शिल्प की प्रशंसा की। बनास के सम्पादक तथा युवा आलोचक पल्लव ने लघु उपन्यासों के शिल्प और प्रविधि की विस्तृत चर्चा की। नवभारत टाइम्स के सम्पादकीय विभाग से जुड़े महेश दर्पण ने लघु उपन्यास की परिभाषा, स्वरूप निर्धारण तथा सीमांकन को लेकर अपना मन्तव्य प्रकट किया।

'प्रेरणा' के संपादक अरुण तिवारी ने कहा कि 'प्रेरणा' का प्रकाशन मेरे लिए जुनून एवं मिशन है। मैं प्रतिकूलताओं का सामना करते हुए भी इसका प्रकाशन जारी रखने के लिए प्रतिबद्ध हूँ। *-अर्जुन प्रताप सिंह*

चिट्ठियों की किताब

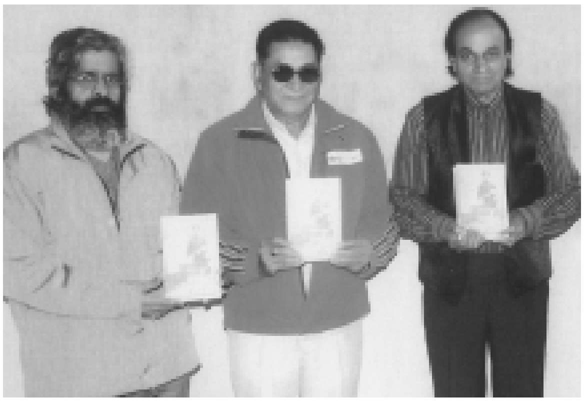

हिन्दी परिवार (इंदौर) के तत्वावधान में साहित्यकार सदाशिव कौतुक के दूसरे पत्र संग्रह 'आपका अपना ही' का लोकार्पण संपादक-साहित्यकार डॉ. पुरुषोत्तम दुबे की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। उन्होंने पत्र संग्रह को धरोहर निरूपित करते हुए कहा कि संग्रह के ज़रिए श्री कौतुक के साहित्यिक योगदान के मूल्यांकन के साथ उनके मित्र संसार की अंतरंगता भी पता चलती है। इस अवसर पर काव्य गोष्ठी में डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, प्रदीप नवीन, भीकूलाल निमाड़े, भाविनी दवे, के.डी. गुप्ता, नवीन जोशी, रमेशचन्द्र शर्मा 'स्वतंत्र', पंकज भाटिया 'कमल', हेरराम वाजपेयी, कीर्ति मेहता, हुकमचंद मालवीय आदि कवियों ने उत्कृष्ट कविताएँ प्रस्तुत कीं।

शब्द साधक हुए अलंकृत

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी ने देश और प्रदेश के साहित्यकारों को उनके साहित्यिक अवदान और सामाजिक प्रतिबद्धता के लिए सम्मानित किया। म.प्र. संस्कृति परिषद् द्वारा भारत भवन भोपाल में आयोजित इस बहुप्रतीष्ठित सम्मान समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में संस्कृति मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा उपस्थित थे। कार्यक्रम के अध्यक्ष माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलपति बी.के. कुठियाला तथा सारस्वत अतिथि के रूप में शिक्षाविद् श्रीधर पराड़कर उपस्थित रहे। अकादमी के निदेशक त्रिभुवननाथ शुक्ल ने अकादमी की विकासशील गतिविधियों की जानकारी दी। अपने विशेष उद्बोधन में संस्कृति मंत्री ने सम्मानित रचनाकारों को शुभकामनाएँ दीं। अलंकरण समारोह में चार राष्ट्रीय तथा आठ प्रादेशिक पुरस्कार दिए गए। राष्ट्रीय पुरस्कारों में 'सृजन का अंतर्पाठ' निबंध के लिए कृष्णदत्त पालीवाल को माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, 'इंटरनेट का माउस' कहानी के लिए डॉ. मधु धवन को मुक्तिबोध पुरस्कार, 'मुक्तिबोध' उपन्यास के लिए विजय को वीर सिंह देव पुरस्कार एवं 'युयुत्सु' कविता के लिए डॉ. राजेंद्र मिश्र को पं. भवानी प्रसाद मिश्र पुरस्कार दिया गया।

प्रादेशिक पुरस्कारों में 'भूभल' उपन्यास के लिए डॉ. मीनाक्षी स्वामी को बालकृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार, 'काहे को ब्याही बिदेस' कहानी के लिए संतोष परिहार को सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार, 'फिर पलाश दहके', कविता के लिए भगवती प्रसाद कुलश्रेष्ठ को श्रीकृष्ण सरल पुरस्कार, 'हिन्दी साहित्य में शिवाजी' आलोचना के लिए कमला प्रसाद चौरसिया को नंददुलारे वाजपेयी पुरस्कार, 'मस्तानी बाजीराव' नाटक के लिए डॉ. हर्षनारायण नीरव को हरिकृष्ण प्रेमी पुरस्कार, 'चीन के दिन' संस्मरण के लिए डॉ. रश्मि झा को राजेंद्र अनुरागी पुरस्कार तथा 'स्वांतः सुखाय' कविता के लिए अनिता सक्सेना को दुष्यंत कुमार पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अलंकृत रचनाकारों को पुरस्कार राशि के साथ स्मृति चिन्ह, शॉल श्रीफल एवं प्रमाण पत्र दिए गए।

'कला मंदिर' ने किया कला विभूतियों का सम्मान

भोपाल की साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्था 'कला मंदिर' के 61वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर रवींद्र भवन में आयोजित एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में कला एवं साहित्य की विभूतियों को सम्मानित किया गया। इनमें मणिपुर व नागालैण्ड के पूर्व राज्यपाल पद्मश्री अवधनारायण श्रीवास्तव, उमेश नेमा, कुँवर किशोर टंडन और जंगबहादुर श्रीवास्तव को अमृत सम्मान प्रदान किया गया। अन्य सम्मानित रचनाकारों में धनंजय वर्मा व उपेंद्र पांडेय (साहित्य कला मनीषी), उमाकांत-रमाकांत गुंदेचा (संगीत कला मनीषी), रश्मि राठौर (नृत्य कला मनीषी), सतीश मेहता (रंगकर्म कला मनीषी) सचिदा नागदेव (चित्रांकन कला मनीषी), महेश श्रीवास्तव (पत्रकारिता कला मनीषी) सुरेश तांतेड़ (संस्कृति कला मनीषी), कमलकांत सक्सेना (शब्द सारथी सम्मान), भारती विश्वनाथन (स्वर भारती सम्मान) डॉ. पुरुषोत्तम चक्रवर्ती व प्रदीप उपाध्याय (पवैया पांडुलिपि, गद्य) मधु शुक्ला, सुरेश 'तन्मय' व दीपक पगारे (पवैया पांडुलिपि, पद्य), ममता तिवारी (माहेश्वरी पुरस्कार), संदीपा पारे, प्रदीप (भक्ति संगीत), हर्षित तिवारी (प्रतिभा पुरस्कार) और मालविका पिल्लई (परिमार्जन पुरस्कार) शामिल हैं। सम्मान समारोह के बाद सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ हुईं। मालविका पिल्लई ने भरतनाट्यम् की प्रस्तुति में भगवान कृष्ण की बाल लीलाओं का मनमोहक निरूपण किया। इसके साथ ही उन्होंने कुचिपुड़ी शैली में तरंगम् रचना भी प्रस्तुत की। इन आकर्षक नृत्य प्रस्तुतियों के पश्चात् शहर की प्रतिभा सम्पन्न गायिका संदीपा पारे ने भजनों की सुमधुर सांगीतिक प्रस्तुतियों से वातावरण में भक्ति रस की गंगा बहा दी।

साहित्यकारों का सम्मान

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्यकारों ने आज़ादी की जंग से लेकर आज तक राष्ट्रहित में मार्गदर्शक की भूमिका निभाई है। बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ व प्रशासक साहित्यकारों से परामर्श करते रहे हैं। साहित्यकारों का सम्मान करना हमारा दायित्व है, उक्त उद्गार भोपाल के हिन्दी भवन में मध्यप्रदेश लेखक संघ के सालाना साहित्यकार सम्मान समारोह में उपस्थित अतिथियों द्वारा व्यक्त किए गए। लेखक

संघ के इस 18वें साहित्यकार सम्मान समारोह में प्रदेश के 17 साहित्यकारों को विभिन्न सम्मानों से अलंकृत किया गया, जबकि श्रेष्ठ कार्य करने वाली संघ की दतिया व उज्जैन इकाई को भी इस अवसर पर सम्मानित किया गया।

मध्यप्रदेश के नगरीय प्रशासन व विकास मंत्री बाबूलाल गौर के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न इस सारस्वत समारोह के विशिष्ट अतिथि राज्य नागरिक आपूर्ति निगम के अध्यक्ष श्री रमेश शर्मा 'गुड्डू भैया' तथा वरिष्ठ हिन्दी सेवी व चिंतक कैलाशचन्द्र पंत थे, जबकि कार्यक्रम की अध्यक्षता संघ के प्रादेशिक अध्यक्ष व वरिष्ठ साहित्यकार बटुक चतुर्वेदी ने की। इस अवसर पर भोपाल की प्रख्यात उपन्यासकार व कथाकार भोपाल की प्रसिद्ध कथाकार एवं उपन्यासकार ज्योत्सना मिलन को अक्षर आदित्य सम्मान, बुरहानपुर के सुपरिचित कथाकार श्री संतोष परिहार को पुष्कर साहित्य सम्मान, शिवपुरी के जाने पहचाने कवि एवं नाटककार अरुण अपेक्षित को देवकीनन्दन माहेश्वरी युवा साहित्यकार सम्मान, भोपाल की सुपरिचित कथाकार ऊषा जायसवाल को काशीबाई मेहता लेखिका सम्मान, टीकमगढ़ के वरिष्ठ बुंदेली साहित्यकार कैलाशबिहारी द्विवेदी को कस्तूरी देवी चतुर्वेदी लोकभाषा सम्मान, इन्दौर के वरिष्ठ व्यंग्यकार जवाहर चौधरी को माणिक वर्मा व्यंग्य सम्मान, भोपाल की वरिष्ठ बाल साहित्यकार आशा शर्मा को चंद्रप्रकाश जायसवाल बाल साहित्य सम्मान, उज्जैन के मराठी भाषी हिन्दी लेखक संतोष सुपेकर को पार्वती देवी मेहता अहिन्दी भाषी हिन्दी लेखक सम्मान, सेंवढ़ा जिला दतिया की प्रख्यात समीक्षक डॉ. कामिनी को डॉ. संतोष कुमार तिवारी समीक्षा सम्मान, भोपाल के वरिष्ठ गीतकार दिवाकर वर्मा को हरिओम शरण चौबे गीतकार सम्मान, जामनेर जिला शाजापुर के मालवी कवि बंशीधर बंधु को हरीश निगम मालवी भाषा सम्मान, भोपाल के संस्कृत एवं हिन्दी विद्वान लेखक प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल को पंडित ब्रजवल्लभ आचार्य संस्कृतज्ञ सम्मान, बुरहानपुर की मराठी भाषी हिन्दी अनुवादक आरती कुलकर्णी को डॉ. वल्लभदास शाह अनुवाद सम्मान, भोपाल के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवेन्द्र दीपक को आजीवन साहित्य साधना हेतु सारस्वत सम्मान, बुरहानपुर के हास्य व्यंग्य कवि गेंदालाल मालवीय 'ज्वलंत' को अमित रमेश शर्मा मंच कवि सम्मान, इन्दौर के वरिष्ठ कवि चन्द्रभान भारद्वाज को मेहमूद जकी गजल सम्मान से अलंकृत किया गया।

कार्यक्रम के प्रारंभ में गुना के युवा चित्रकार नरेश कश्यप की कविता पोस्टर प्रदर्शनी का शुभारंभ भी अतिथियों द्वारा किया गया। समारोह का संचालन विनय उपाध्याय ने किया, प्रशस्ति वाचन अनिरुद्ध सिंह सेंगर और मनोहर गोरे सत्संगी ने किया।

डॉ. प्रेम कुमारी सम्मानित

भोपाल से प्रकाशित छंदधर्मी मासिकी 'संकल्प रथ' की संपादिका एवं समीक्षक डॉ. प्रेमकुमारी कटियार को कानपुर के दो और वाराणसी के एक सम्मान से विभूषित किया गया। कानपुर की संस्था 'सरस्वती' द्वारा अलकनन्दा देवी शुक्ल की स्मृति में गीत के समर्थ हस्ताक्षर देवेन्द्र सफल ने सम्मान प्रदान किया। समारोह के मुख्य अतिथि 'सहारा' के स्थानीय संपादक नवोदित थे। इस सारस्वत समारोह की अध्यक्षता संकल्प रथ के संपादक राम अधीर ने की।

बाँसुरी के पितृपुरुष को स्वरांजलि

आकाशवाणी, भोपाल द्वारा पं. पन्नालाल घोष की जन्मशती के उपलक्ष्य में 23 से 25 फरवरी तक तीन दिवसीय शास्त्रीय संगीत समारोह का आयोजन किया गया। भारत भवन में हुए इस संगीत समारोह में कई जाने-माने संगीतज्ञों ने प्रस्तुतियाँ देकर पन्ना बाबू को स्वरांजलि अर्पित की।

समारोह का आरंभ मुंबई के प्रसिद्ध बाँसुरी वादक पं. नित्यानंद हल्दीपुर के वादन से हुआ। उन्होंने राग पूरिया तथा राग पीलू प्रस्तुत किया। तबले पर भोगीराम रतौनिया ने संगत दी। उनके पश्चात् कोलकाता के शास्त्रीय गायक मनोजीत मल्लिक का गायन हुआ। उन्होंने राग जोगकौंस, राग छायानट तथा मिश्र भैरवी में रचनाएँ पेश कीं। उनके साथ तबले पर सलीम अल्लाहवाले ने बेहतरीन संगत की। समारोह की दूसरी शाम सितार और संतूर की जुगल बंदी के नाम रही। मुंबई से आए पं. पन्नालाल घोष के पोते नयन घोष ने सितार और कोलकाता के तरुण भट्टाचार्य ने राग यमन प्रस्तुत कर संध्या का स्वर श्रृंगार किया। इसके बाद बंगाल की भटियाली धुन पेश कर श्रोताओं को जुगलबंदी के जादू का अहसास कराया। नफीस अहमद ने तबले पर कुशल संगत दी। द्वितीय चरण में धारवाड़ से आए सुप्रसिद्ध गायक व्यंकटेश कुमार ने राग 'सरस्वती' प्रस्तुत कर अपनी प्रतिभा सम्पन्न गायकी का परिचय दिया। उन्होंने विलम्बित एक ताल में राग का भावपूर्ण प्रसार करते हुए द्रुत तीन ताल में समाहार किया।

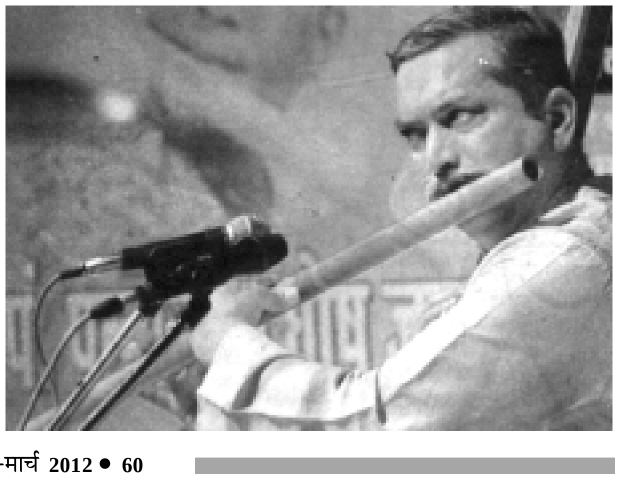

समारोह की समापन संध्या पर गिटार और शहनाई की जुगलबंदी प्रस्तुत की गई। बैंगलुरु के गिटारवादक प्रकाश सोनटक्के और शहनाई वादक लोकेश आनंद ने प्रयोगशील जुगलबंदी प्रस्तुत की। जुगलबंदी हेतु अल्प प्रचलित इन दो वाद्यों के स्वर संयोग ने राग जोग की रचना की। विलम्बित एक ताल तथा द्रुत तीन ताल में सुरीला तालमेल श्रोताओं को आनंद से सराबोर कर गया। इसके बाद शहनाई और गिटार की माधुर्य और अल्हड़पन से भरी बनारसी धुन पेश कर श्रोताओं को सम्मोहन से भर दिया। रामस्वरूप रतौनिया की तबले पर संगत तारीफे काबिल रही।

समारोह की अंतिम प्रस्तुति के रूप में तबले और पखावज की जुगलबंदी पेश की गई। तबले पर मनोज शर्मा और पखावज पर पं. रविशंकर उपाध्याय ने क्रमशः बारह मात्रा की एकताल और चौताल, मध्य और द्रुत लय में तीन ताल व आदिताल की प्रस्तुतियों से जुगल बंदी को शिखर तक पहुँचाया। सारंगी पर भोपाल के फारुख लतीफ खान ने लहरा पर अपनी विशेष छाप छोड़ी।

चित्रकला शिविर

कला सिर्फ कला के लिए हो तो वह अधूरी है। कला जब मनुष्यता और प्रकृति के लिए विचारशील व जवाबदेह होती है, तभी उसकी सार्थकता सिद्ध हो पाती है। कला की इसी उपादेयता को लक्ष्य करते हुए क्राफ्ट्सवाला वेलफेयर सोसायटी का पदार्पण हुआ है। इस कल्पनाशील रचनात्मक प्रकल्प का उद्देश्य समाज की मुख्यधारा के हाशिए पर जी रहे शारीरिक रूप से असमर्थ बच्चों, निःशक्त जनों तथा आर्थिक रूप से अक्षम जनों की रचनात्मक प्रतिभा को अभिव्यक्ति का मंच देकर उनके जीवन स्तर को समुन्नत बनाना है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए 'क्राफ्ट्स-वाला' ने नेहरू नगर, भोपाल के विश्वास विकलांग स्कूल में एक दिवसीय बाल चित्र कला शिविर का आयोजन कर अपना पहला सोपान तय किया। इस कार्यक्रम में शारीरिक एवं मानसिक रूप से अक्षम बच्चों से रचनात्मक संवाद स्थापित करते हुए संस्था के युवा कार्यकर्ताओं ने बच्चों को रंग, ब्रश, ड्राईंग शीट, अन्य चित्रकला सामग्री व टिफिन बॉक्स वितरित किए। बच्चों ने अपनी कल्पनाशीलता का प्रयोग कर रंगों को नई-नई भूमिकाएँ दीं। इस शिविर में बनाए गए चित्रों को ग्रीटिंग कार्ड की शक्ल में प्रस्तुत किया जाएगा तथा उनसे होने वाली आय का एक अहम् हिस्सा बच्चों की कल्याणकारी योजनाओं में निवेश किया जाएगा।

इस कार्यक्रम को संचालित करने हैप्पी रैकवार (सचिव), विक्रम सिंह राजपूत, उमेश चौरे, धीरज अग्रवाल, सूरज राय, सौरभ अनंत, अंशुल, अमीन खान, अनुज, विहान नाट्य संस्था के सदस्य तथा विश्वास विकलांग स्कूल के शिक्षकगण उपस्थित थे। 'क्राफ्ट्स वाला' ऐसे ग्रामीण तथा जनजातीय कलाकारों की रचनात्मकता को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य भी कर रहा है जिनकी कलात्मक प्रतिभा गुमनामी के कोहरे में ढँकी हुई है।

लेखक-आलोचकों को कृति सम्मान

''समाज धीरे-धीरे साहित्य से कटता चला जा रहा है, खासकर युवा। हमारे देश के युवाओं को चाहिए कि वे समाज कल्याण हेतु बढ़ चढ़कर आगे आएँ।''

ये महत्वपूर्ण विचार छत्तीसगढ़ के राज्यपाल शेखरदत्त ने व्यक्त किए। अवसर था राष्ट्रीय तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण एवं शोध संस्थान में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में आयोजित वार्षिक प्रतिष्ठा अलंकरण पुरस्कार समारोह का। जाने-माने कथाकार स्वयंप्रकाश को विश्व में भारत की वर्तमान राजनीतिक जीवन की विलक्षण आलोचना प्रस्तुत करने के लिए भवभूति अलंकरण, कवि, आलोचक महेंद्रसिंह को उनके प्रकाशित आलोचना ग्रंथ 'लंबी कविता का रचना विधान' के लिए वागीश्वरी सम्मान, प्रदेश की प्रसिद्ध कथाकार डॉ. स्वाती तिवारी को कथा संग्रह 'स्वाती तिवारी की चुनिंदा कहानियां' के लिए वागीश्वरी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। समारोह के दौरान हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विवरणिका का विमोचन भी किया गया।

मानव संग्रहालय में स्थापना दिवस

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय भोपाल के 36वें स्थापना दिवस के समारोह में ओडिशा की संस्कृति की महक बिखरी। इस वर्ष यह समारोह ओडीशा की सांस्कृतिक विरासत थीम पर मनाया गया।

वीथि संकुल में केरल के पारंपरिक दीप 'आल विलक्कू' का प्रज्वलन कर समारोह का शुभारंभ हुआ। ओडिसा की सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के उत्सव 'रंग कलिंग' में जनजातीय कलाकारों ने गोटीपुआ, तिनमोनतुन और लांजिया साँवरा नृत्य की प्रस्तुति दी। इन नृत्यों में राग बसंत पर आधारित गुरू वंदना, देशभक्ति गीत तथा बच्चे के जन्म से नामकरण संस्कार तक किए जाने वाले उत्सव की छटाएँ देखने को मिलीं। वीथि संकुल में भारत की द्वीप संस्कृतियों पर आधारित प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, कृष्णा-गोदावरी-कावेरी नदी द्वीप, असम के ब्रह्मपुत्र नदी द्वीप एवं ओडिशा के समुद्र तटीय संस्कृति की झलक इस दीर्घा में देखने को मिली। अपने पारंपरिक तानेबाने के साथ कलाकारों की प्रस्तुतियों ने साबित किया कि परंपरायें ओढ़ी नहीं जातीं, अंगीकार की जाती हैं। सदियों से परंपरा के प्रहरियों ने इस सूत्र को अपने जीवन और सृजन में पूरी आस्था और निष्ठा के साथ अपनाया है। संग्रहालय की गतिविधियाँ इस तथ्य की साक्षी हैं।

कला विभूतियों को सृजन सम्मान

मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा स्थापित राष्ट्रीय सम्मानों का अलंकरण समारोह रवींद्र भवन में संस्कृति मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा की गरिमामय उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। पर विभिन्न विधाओं की बारह लब्ध प्रतिष्ठ विभूतियों को राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किए।

वर्ष 2008-2009 हेतु मराठी के मूर्धन्य कवि मंगेश पाडगांवकर (मुंबई) को राष्ट्रीय कबीर सम्मान, विख्यात लेखक व आलोचक रमेशचंद्र शाह (भोपाल) को मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, शीर्ष उर्दू साहित्यकार गोपीचंद नारंग (दिल्ली) को इकबाल सम्मान, विख्यात व्यंग्यकार के.पी. सक्सेना (लखनऊ) को शरद जोशी सम्मान से विभूषित किया गया। इसी श्रृंखला में शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में बनारस घराने के ख्यात गायक पं. छन्नूलाल मिश्र, शास्त्रीय नृत्य के क्षेत्र में कथकली के शीर्ष कलाकार गुरू कलामंडलम् गोपी, रुपंकर कलाओं के क्षेत्र में विख्यात चित्रकार जे.राम पटेल को राष्ट्रीय कालिदास सम्मान से विभूषित किया गया। लोककलाओं के क्षेत्र में पुरुष कलाकारों को प्रदान किए जाने वाले तुलसी सम्मान से टेराकोटा कलाकार रंगास्वामी वेडार तथा महिला कलाकारों के लिए स्थापित अहिल्या सम्मान से लोकप्रसिद्ध कालबेलिया नर्तकी गुलाबो को विभूषित किया गया। इसी प्रकार वर्ष 2009-10 हेतु शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में विख्यात वायलिन वादिका डॉ. एन राजम्, शास्त्रीय नृत्य के क्षेत्र में विख्यात भरत नाट्यम् नृत्यांगना सरोजा वैद्यनाथन तथा रुपंकर कलाओं के क्षेत्र में प्रसिद्ध चित्रकार कृष्ण कन्हाई को राष्ट्रीय कालिदास सम्मान से विभूषित किया। समस्त सम्मानित विभूतियों को सम्मान निधि, सम्मान पत्र एवं शॉल-श्रीफल प्रदान किये गए। अलंकरण समारोह के पूर्व स्वराज भवन की कला दीर्घा में जे.राम पटेल, कृष्ण कन्हाई एवं रंगास्वामी वेडार की कलाकृतियों की प्रदर्शनी का शुभारंभ भी किया गया। अलंकरण के पश्चात् डॉ. एन. राजम् ने वॉयलिन वादन तथा पं. छन्नूलाल मिश्र ने शास्त्रीय गायन संगीत का अध्यात्मिक प्रभाव उत्पन्न कर श्रोताओं को अभिभूत कर दिया।

समारोह के दूसरे दिन साहित्यिक सम्मानों से नवाजे गए लेखकों का रचनापाठ आयोजित किया गया। पश्चात् डॉ. सरोजा वैद्यनाथन ने भरतनाट्यम् तथा गुरू कलामंडलम् गोपी ने कथकली की प्रस्तुति देकर भारत की समृद्ध शास्त्रीय नृत्य परंपरा को मंच पर जीवंत किया। समारोह के अंतिम दिन लोक कलाकार गुलाबो ने कालबेलिया नृत्य का सम्मोहन रचा।

संस्कृति एवं जनसम्पर्क मंत्री लक्ष्मीकांत शर्मा ने भारत सरकार के विदेश मंत्रालय की संस्था भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आई.सी.सी.आर.) के क्षेत्रीय कार्यालय का शुभारंभ किया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादमी बाणगंगा परिसर में यह कार्यालय आरंभ किया गया है। संस्कृति मंत्री ने कहा कि मध्यप्रदेश के कला जगत के लिए आई.सी.सी.आर. का क्षेत्रीय कार्यालय बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने अपेक्षा की कि आई.सी.सी.आर. का क्षेत्रीय कार्यालय प्रदेश के कलाकारों को देश-विदेश में प्रस्तुत करने का माध्यम बनेगा। आई.सी.सी.आर. के महानिदेशक डॉ. सुरेश कुमार गोयल ने कहा कि निश्चित ही यह क्षेत्रीय कार्यालय भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में म.प्र. की कलाओं को व्यापक स्तर पर उभारने का प्रयास करेगा। इस अवसर पर नूतन कॉलेज की छात्राओं ने डॉ. सुधा दीक्षित के निर्देशन में सामूहिक सितार वादन किया। संस्कृति मंत्री ने इस मौके पर कला अकादमी में तैयार नवीन चित्रकला गैलरी का भी उद्घाटन किया। कार्यक्रम में प्रशासन अकादमी की महानिदेशक आभा अस्थाना भी उपस्थित थीं।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की म.प्र. शाखा भोपाल में

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् नई दिल्ली द्वारा भोपाल में इस 16वें क्षेत्रीय कार्यालय की स्थापना बहुआयामी गतिविधियों को विस्तार देने के उद्देश्य से की जा रही है। इसके माध्यम से विदेशी कला दलों का प्रदर्शन, प्रदेश के कलाकारों को अन्य राज्यों में तथा विदेशों में मंच उपलब्ध कराने, प्रदर्शनी, कांफ्रेंस, सेमीनार आदि के आयोजन के लिए समन्वय एवं प्रबंधन का कार्य किया जाएगा। इसके अलावा एशिया, अफ्रीका व दक्षिण-मध्य अमेरिका के देशों से अध्ययन के लिए प्रदेश में आने वाले विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप भी उपलब्ध कराई जाएगी।

आईसीसीआर के क्षेत्रीय कार्यालय के शुभारंभ मौके पर शहीद भवन में सांस्कृतिक संध्या का आयोजन भी हुआ। इसमें इंडो-फ्रेंच प्रोडक्शन ग्रुप ने 'स्वानलेक रिविजिटेड' की मनमोहक प्रस्तुति देकर दर्शकों का दिल जीत लिया। रिदमोजैक कंपनी द्वारा प्रस्तुत इस नृत्य में क्लासिक बैले, फ्लैमिंगों, टेप डांस आदि के जरिए यूरोपियन राजा-रानी प्रिंस सेगफ्राइड और ओदेती की प्रेमकथा का प्रसंग दिखाया गया। करीब एक घंटे की इस प्रस्तुति में योरमा लॉरिनगेट (फ्रांस) और कोलकाता के डॉ. मितुल सेनगुप्ता, रॉनी शाम्बिक घोष, प्रसन्ना शैकिया, सुभाष बेरा व रक्तिम गोस्वामी ने भाग लिया। संगीत रचना दिशारी की और प्रकाश परिकल्पना अजय रानू की थी। फ्रांस के गियानिन लॉरेनगेट, कोलकाता के डॉ. सेनगुप्ता व रॉनी शाम्बिक घोष के निर्देशन में तैयार इस नृत्य प्रस्तुति के देश भर में अभी तक आठ शो हो चुके हैं।

पाठक संवाद

संपादकीय में बालहित साहित्य सृजन को लेकर जो चिंता व्यक्त की गई है, वह वाजिब है। इसमें प्रकारांतर से जो मारक मुद्दा व्यक्त किया गया है, उसे उद्धृत करना चाहूँगा- 'स्कूल का दबाव और यहाँ मुझे किसी का भी अपमान न करने की मंशा के साथ कहने दें कि- हमारी शालाओं का नकलीपन हट जाने से बच्चे जो स्वतंत्रता महसूस करते हैं, जो स्वाभाविकता महसूस करते हैं, उसने उन्हें आनंद और उत्साह से भर दिया है। क्या शिक्षा और कला का उद्देश्य यही नहीं होना चाहिए। रंगकर्म की पत्रिका में मुझे तो साहित्य का स्पर्श मिल ही गया। कैफ़ साहब पर प्रेमशंकर रघुवंशी, अश्क़ जी पर विजय बहादुर सिंह, भूपेन हज़ारिका पर संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित लिखा है। रपट और सृजन के आसपास में रंगकर्म की गतिविधियों की सूचनाएँ पढ़कर चकित होता हूँ। मंच पर इतना काम हो रहा है- गज़ब। अंक की छपाई, सफाई और प्रस्तुति सुरुचिपूर्ण।

-चन्द्रसेन विराट, भोपाल

●●●

यह उल्लेखनीय है कि 'रंग संवाद' अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं से इस मामले में भिन्न एवं विशिष्ट है क्योंकि यह महज कविता, कहानी और ग़ज़ल के प्रकाशन तक ही सीमित नहीं है। रंग संवाद में लोक कलाओं और संस्कृति के बारे में विशिष्ट एवं शोधपरक लेख प्रकाशित होते हैं जो अन्य प्रतिष्ठित एवं मुख्यधारा की साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए भी स्पृहणीय हैं। लेखों ने मेरे मन में इस पत्रिका एवं प्रकाशक मण्डल के प्रति सम्मान और बढ़ा दिया है। विशेष रूप से श्री श्याम सुंदर दुबे द्वारा लिखित ''अब ना रहे वे आल्हा गायक'' का उल्लेख करना चाहूँगा जिसमें लेखक ने न सिर्फ अकादमिक स्तर का लिखा है वरन लोक संस्कृति से उनका गहरा जुड़ाव भी परिलक्षित होता है। संपादकीय ''हम बच्चों के लिए क्यों नहीं लिखते'' भी पूरे मनोयोग से लिखा गया शानदार लेख है। संपादकीय में टेरी इगल्टन की पुस्तक के हवाले से लिखी गयी पंक्तियाँ एवं विचारोत्तेजक हैं।

-डॉ. परितोष मालवीय, ग्वालियर

●●●

नये वर्ष ने दुःखद घटना के साथ दस्तक दी। 'सिने गाइड' चला गया- मुसाफिर जायेगा कहाँ- दम लेले घड़ी भर - वाक़ई उसकी जीवन यात्रा में घड़ी भर का ठहराव नहीं था। बस चलते ही जाना है। ज़िन्दगी एक नशा है जब चढ़ता है तो बस मत पूछो और जब उतरता है तो ढल जाये। जीवन रेस में जो पिछड़ गया वह मर गया। उसने कभी थकना नहीं सीखा। काम ही उसकी पूजा थी। काम न करना याने कि मौत काम करते-करते वह चला गया। बम्बई का बाबू चला गया। देव मरना नहीं चाहता था कम से कम भारतीयों के सामने। इसलिए वतन से दूर उसने अपना काम करते-करते अंतिम सांस ली और मानो कहता रहा- ऐ मेरी ज़िन्दगी आज तू झूम ले, आसमां को चूम ले, किसको पता कल फिर आये ना आये। देव के मरने की ख़बर पानी पर लिखी लिखाई है। जाओ देव तुम देश की धड़कन में हमेशा ज़िंदा रहोगे। अपने चाहने वालों के लिए चिर युवा कामदेव के समान सम्मोहित करते हुए महकते रहेंगे। अपनी यादों के सहारे। क्योंकि तुम किसी अभिशप्त कामदेव का अवतार लेकर पृथ्वी पर आये थे। देव कभी मरा नहीं करते।'' हमारे समय का विवेक है हमारे बुजुर्ग वे जीवन को समृद्ध करते हैं और अगली पीढ़ियों के लिए बड़ी विरासत बनाते हैं। उनकी उम्र का बीतना अनुभव और उपलब्धि से भरपूर वर्ष का जुड़ना भी है।

-जनार्दन बी. जोशी, भोपाल

●●●

पत्रिका के मुख पृष्ठ की तरह जीवन के स्याह रंग को साहित्य, संगीत एवं रंगमंचीय साहित्य के रंगों से उज्जवल करती 'रंग संवाद' मिली। मेरे जिला पड़ोसी भाई प्रेमशंकर रघुवंशी कैफ़ भोपाली-संस्मरण लिख मुझे भी स्मृति की उस महफ़िल में ले गए जहाँ कैफ़ साहब के ही निवास पर कलमकार परिषद के कार्यक्रम में उन्हें मैंने जी भर कर सुना था। रंग संवाद सभी स्तर के पाठकों का ध्यान रखते हुए अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर है।

-गिरी मोहन गुरु, होशंगाबाद

●●●

उत्कृष्ट संपादन और प्रस्तुति के बेहतर मानक गढ़ने के लिए 'रंग संवाद' परिवार की मुक्त मन से प्रशंसा की जानी चाहिए। यह अपने आप में सांस्कृतिक शोध की नई दिशाएँ तय करने वाला मंच है। एक महत्वपूर्ण बात यह कि कला विषयक लेखकों के सीमित दायरे को तोड़ते हुए इस पत्रिका ने नए लेखक-आलोचकों को भी जगह दी है। अगर यह जारी रहा तो हमारे समय की सांस्कृतिक धारा को नए सिरे से समझना भी संभव होगा। पाठ्य माध्यम के पक्ष में शंभूनाथ जैसे वरिष्ठ चिंतक ने जो परेशानियाँ गिनाई हैं, उनसे सहमत होकर कहना चाहूँगी कि हमें वस्तुवादी दौर में विचार-संस्कार की जगह बनाने के प्रयास करने होंगे। 'रंग संवाद' के पृष्ठों पर मुझे जो स्पंदन दिखाई दिया, वह ऐसी ही कोशिश है। रपटें पढ़कर लगता है कि अभी सूखा नहीं पड़ा है।

-सुनयना सेंगर, ग्वालियर

●●●

इस अंक में क्या कुछ नहीं है। दिवंगत विभूतियों को प्रणति देकर आपने उनके रचनाकर्म का सादर रेखांकन किया है। हबीब तनवीर का पुनर्पाठ 'शिविरों में बँटी संस्कृति' बड़ा ही सामयिक है। संतोष चौबे ने नौनिहालों के पक्ष में कलम चलाकर उनकी दुनिया को बड़ा बना दिया। लेकिन आपको नहीं लगता कि 'फुहार' जैसी प्रस्तुतियाँ इसलिए बार-बार होनी चाहिए क्योंकि बच्चे प्रेरक साहित्य से इसी मनोरंजन शैली में जुड़ना चाहते हैं। हमें अच्छा साहित्य खोजकर नए रंगमंचीय प्रयोग करने की भी ज़रूरत है।

पाठक संवाद

●●●

'रंग संवाद' को माउण्ट आबू में पुरस्कृत होने की ख़बर पढ़कर अच्छा लगा। इसे ठकुर सुहाती न मानें तो कहना चाहूँगी कि इस पत्रिका का हर पन्ना इसकी उत्कृष्टता की गवाही देता है। मैं जिस संस्थान में काम करती हूँ वहाँ समाज सेवा से जुड़ी खासकर महिलाओं के सृजनात्मक रुझानों को समझकर उनके अनुरूप उन्हें मार्गदर्शन दिया जाता है। 'रंग संवाद' के आलेख और यहाँ-वहाँ होने वाली सांस्कृतिक गतिविधियों की ख़बरों को पढ़कर हमारी बहनें काफी प्रेरित हो रही हैं। क्या वनमाली सृजन पीठ ऐसी कमज़ोर वर्ग की प्रतिभाशाली महिलाओं की मदद के लिए मंच उपलब्ध करा सकता है।

-साधना अनंत बोरकर, नासिक

●●●

टॉम साहब को फिल्मों में तो खूब देखा लेकिन वे रंगमंच पर भी इतने लगातार और गंभीरता से जुड़े हैं, मालूम नहीं था। ममताजी ने उनसे अच्छी मुलाकात कराई। उन्होंने नाटकों में दर्शकों की भागीदारी को अहम बताया, मैं सहमत हूँ। इस अंक में नन्हें-मुन्नों को जायज सवालों पर संतोष चौबे ने संपादकीय आलेख में तर्कों के साथ अपनी बात रखी। मेरा सुझाव है कि फिल्मों की तरह कुछ पुराने और लोकप्रिय नाटकों की चर्चा भी करें। विनय उपाध्याय को संपादन के साथ ही प्रस्तुति के सभी सुन्दर आयामों के लिए मन से बधाई।

-अभिजीत सारस्वत, महू

●●●

'रंग संवाद' के अंक मुझे मिले। रंग पटल और रंगमंच का साहित्य से जो अन्तर संबंध है, उनकी अभिव्यक्ति की यह विरल पत्रिका है।

-ज़हीर क़ुरेशी, ग्वालियर

●●●

रंग संवाद का पाँचवा अंक प्राप्त हुआ और उसमें प्रकाशित सभी सामग्री सम्पादकीय कौशल और उसकी सकारात्मक दृष्टि को बयान करती है।

-अरुण पाण्डेय, जबलपुर

●●●

संध्या चतुर्वेदी (कानपुर), सेवाराम त्रिपाठी (रीवा), डॉ. सुभद्रा खुराना (भोपाल), पल्लव (दिल्ली), माणिक सोनी (जयपुर), सुरेन्द्र गिरी (शिमला), ललित नारायण उपाध्याय (खंडवा), अनिल गोयल (कानपुर), त्रिभुवन गोरे (मंदसौर), के. रवीन्द्र (रायपुर), आलोक सेठी (खंडवा), हर्ष उपाध्याय (खंडवा), स्मिता वाजपेयी (लखनऊ), पीयूष पाण्डे (प्रयाग), अनिता सिंघल (नोएडा), वर्षा देशपाण्डे (महासमुंद) आदि की प्रतिक्रियाएँ भी मिलीं।

निदा फाज़ली मेरे पसंदीदा शायर हैं। विनय उपाध्याय ने उनका सही विश्लेषण किया है। संयोग से वे किताबों, मंचों और संगीत के ज़रिए जनता तक पहुँचने वाले विरले शायरों में से एक हैं। वे एक पॉज़िटिव और प्रोग्रेसिव राइटर हैं। टॉम आल्टर से ममता तिवारी की बातचीत एक अच्छी प्रस्तुति है। लेकिन टॉम से और गहरे सवाल किए जा सकते थे। ख़ैर साक्षात्कार के दौरान की मानसिकता पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। सच्चिदानंद जोशी की कविताओं ने प्रभावित किया। हम जैसे नाट्य प्रेमियों को नई दृष्टि मिली। पुष्पा भारती का रुदन बाजिब है कि कलम में आज वो ताप नहीं है। आधुनिकता और परंपरा को एक साथ देखकर भी अच्छा लगा। आल्हा गायन पर श्यामसुन्दर दुबे और नौटंकी पर सुनील मिश्र के आलेख विरासत को उच्च आसन पर बैठाते हैं। अलखनंदन ने कविता और रंगमंच को लेकर बहुत गड्ड-मड्ड बातें की हैं। विचारों का सिलसिला भी बाधित लगता है। सांस्कृतिक रपटों की यही सघनता बनाए रखिए।

-हिमांशु लोखंडे, नागपुर

●●●

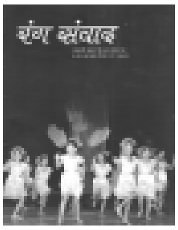

'रंग संवाद' को एक और शानदार अंक की बधाई। आज के समय में ऐसी जनतांत्रिक पत्रिका का प्रकाशन, अपने आप में एक कीर्तिमान है। खुले और विराट मन का परिचय दिया है 'रंग संवाद' ने। कोई तटबंध नहीं। सारे खिड़की-दरवाज़े खुले दिखाई दे रहे हैं और सब ओर की हवाएँ यहाँ अपनी वैचारिक गंध लिए महसूस की जा सकती हैं।

-डॉ. शिवनारायण वर्मा, कटनी

●●●

आपका आशय 'रंग संवाद' को लेकर साफ है कि इसमें रंगमंचीय गतिविधियों और विधाओं को वरीयता दी जाती है। मेरी अपेक्षा और निवेदन है कि इसमें रुपंकर कलाओं के आसपास हो रहे विचार-विमर्श को भी शामिल किया जा सकता है। आपने पिछले किसी अंक में स्पष्ट किया है कि यह पत्रिका साहित्य और तमाम प्रदर्शनकारी कलाओं का साझा मंच बने। मैं करीब तीस बरसों से शिल्प और चित्रकारी में संलग्न हूँ लेकिन अन्य कला माध्यमों में भी मेरी समान रुचि है। मेरी तरह ही अन्य विधाओं के रचनाकार होंगे जो दीगर अनुशासनों की ओर आकृष्ट होकर कुछ नया खोजते-बीनते होंगे।

-प्रियेशदत्त मालवीय, भोपाल

●●●

इस अंक की विशेष प्रस्तुति मेरे लिए प्रसाद के उन नाटकों से परिचय पाना रहा जिनके मंचन और जिनके बारे में चर्चाएँ प्रायः कम हुई हैं। प्रायश्चित, कल्याणी परिचय, करुणालय, राज्यश्री इन नाटकों के बारे में नई पीढ़ी तो क्या हम जैसे प्रौढ़ वय के बहुत से रंगप्रेमी भी नहीं जानते। अब नाटकों की दुनिया में सक्रिय युवाओं का ध्यान अध्ययन, अध्यवसाय के प्रति कम और प्रचार-प्रसिद्धि की ओर ज्यादा है। प्रसादजी के नाटकों के प्रयोग को महेश-आनंद ने अच्छी तरह विश्लेषित किया है। अन्य सामग्री भी पठनीय है। छपाई और आकल्पन क्लासिक है।

-वीरेन्द्र सिंह परमार, इंदौर

आगरा बाज़ार

शेष विशेष

विनय उपाध्याय

जीवन की तरह रंगमंच की इबारत भी मुश्किल है। वह संभावनाओं का खुला आकाश है, जहाँ यथार्थ और कल्पना की ऊँची उड़ानें भरी जा सकती हैं। हिन्दी नाटकों के आधुनिक इतिहास में 'आगरा बाज़ार' एक ऐसी ही मिसाल बना। मशहूर रंगकर्मी हबीब तनवीर की रंगयात्रा का संग-ए-मील रहा है यह नाटक।

उर्दू-हिन्दी के संगम से उठारहवीं सदी में आम फहम कविता कहने वाले शायर नज़ीर अकबराबादी की नज़्मों को नाट्य रूपक के बतौर पेश करते हुए हबीबजी ने शायरी, संगीत, अभिनय और निर्देशन का बेहतर रसायन तैयार किया। यह प्रयोग दर्शकों को इतना पसंद आया कि मंचन की कई पुनरावृत्तियाँ हुईं। हालाँकि बाद के बरसों में नाटक की पुरानी चमक वे नहीं लौटा पाए, लेकिन शोहरत की बुलंदियाँ छू चुके 'आगरा बाजार' की खुश्बू से तारी होने की गरज दर्शकों पर सदा हावी थी।

'आगरा बाजार' के साथ कई किस्मों की दिलचस्पियाँ जुड़ी हैं। पहला तो यही कि वह सिर्फ नजीर की नज्मों का कोलाज होकर भी रंगमंचीय अनुभवों से समृद्ध है, दूसरी खूबी है इसका संगीत जिसमें राग-रागिनियों की छौंक के साथ ही छत्तीसगढ़ी लोक संगीत की सुगंध भी रची-बसी है। यह भी कि इस नाटक का दृश्यांकन और अभिनय भी बेहद कलात्मक सहजता लिए हैं। इन सबका बुनियादी आकल्पन करने वाले हबीब तनवीर के फन का असर पूरे नाटक को अलौकिक बनाता रहा।

दिलचस्प बुनावट वाले इस नाटक के मंच पर आगरा का बाज़ार है जहाँ घोर मंदी छाई है और कुछ भी नहीं बिक रहा। एक ककड़ी वाले के दिमाग में यह बात आती है कि यदि कोई कवि उसकी ककड़ी के गुणों को बखानती कविता लिख दे तो बिक्री ज़रूर बढ़ेगी। वो कई शायरों के पास जाता है पर कोई भी इस काम के लिए राज़ी नहीं होता। अंत में वह शायर नज़ीर के पास जाता है जो फौरन उसका काम कर देते हैं। वह नज़ीर की लिखी ककड़ी पर कविता गाता हुआ आता है और उसके यहां ग्राहकों की भीड़ लग जाती है। फिर तो लड्डूवाला, तरबूज वाला आदि सब एक-एक करके वही करते हैं और जल्दी ही सारा बाज़ार नज़ीर के गीतों से गूँजने लगता है।

इस मुख्य कथ्य के बीच एक बेरोजगार युवा की कहानी पिरोई गई है जो एक गणिका के फेर में पड़ा हुआ है और जो अंत में उसी पुलिस इन्सपेक्टर के हत्थे चढ़ता है जिसे कभी प्रेम के खेल में उसने परास्त किया था।

आगरा बाज़ार का पहला मंचन **19** और **20** अप्रैल **1954** को दिल्ली के रामलीला ग्राउंड पर खादी प्रदर्शनी के सभागार में हुआ था। तब **1, 3** और **5** रुपए के टिकट से दर्शकों ने इसे देखा था। पंद्रह नज्मों और पचास पात्रों के साथ फैले इस नाटक का संगीत निर्देशन संगीतकार सतीश भाटिया ने किया था। जबकि विख्यात सितार वादक पं. रविशंकर ने इसकी धुनों को संवारा था।

यह नाटक नज़ीर अकबराबादी की मानवीय शायरी के इर्द-गिर्द बुना गया है। नज़ीर सच्चे अर्थों में एक ऐसे जनकवि थे जिसने ठेलेवालों, बनियों, भिखारियों, आवारा छोकरों की फरमाइश पर कई बार गीत लिखे, पर उन्हें कभी एकत्रित कर छपवाने के फेर में नहीं पड़े। उनके गीतों में लोक भाषा और अपभ्रन्शों के इस्तेमाल ने उन्हें उर्दू शायरी की मुख्य धारा से काट दिया था। उनके गीत उनकी मृत्यु के कई वर्षों बाद एक विद्वान द्वारा इत्तेफाक से खोजे गए जब, एक भिखारी द्वारा गाए जा रहे नज़ीर के गीत पर उनका ध्यान गया। नज़ीर की पोती के पास से कुछ गीत-शायरी प्राप्त हुए जिन्हें फिर पुस्तकाकार छापा गया, किन्तु उनके लिखे गीतों का संभवतः बड़ा हिस्सा तो सदा के लिए खो ही चुका था।

आगरा बाज़ार नाटक में नज़ीर स्वयं किरदार के रूप में उपस्थित नहीं होते क्योंकि उनके जीवन संबंधी कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। केवल इतना पता चलता है कि यह शायर बच्चों को पढ़ाकर जीवनयापन करता था और उसने लखनऊ के नवाब तथा अन्य चाहने वालों के द्वारा दिए गए निमंत्रण या कामों को हमेशा ठुकराया।

पतंग वाले की दुकान वह मुकाम है जहाँ लोग इकट्ठे होकर नज़ीर के सरल, जनकेन्द्रित गीत गाते हैं जबकि इसके ठीक उलट सामने की पुस्तक वाले की दुकान पर हमेशा दरबारी शायरी के संभ्रान्त स्वरूप पर चर्चा होती रहती है। इन दो ध्रुवों के बीच से बहती जीवन की धारा है- कुम्हार, रहड़ीवाले, दुकानदार, वेश्याएं, दरबारी, आवारा और बेरोजगार लोग। जीवन की इस रौनक से, जो नज़ीर के गीतों में इतने विविध रूपों और रंगों में प्रकट होती है- उस पुस्तक की दुकान और वहाँ बैठने वाले विद्वान बिल्कुल अछूते बने रहते हैं।

1954 में लिखा और मंचित किया गया यह नाटक गीत व नाट्य तथा लोक व शहरी कलाकारों के समावेश का पहला सुविचारित प्रयोग था। पैंतीस साल पूर्व किए गए इसके पहले मंचन में जामिया मिलिया के प्रबुद्ध शिक्षक व छात्र तथा निकटवर्ती ओखला गाँव के लोगों ने अभिनय किया था। 1970 में कुछ छत्तीसगढ़ी कलाकारों के साथ इस नाटक को फिर से उठाया।

इस नाटक का सांगीतिक ताना-बाना लगभग वही 1954 वाला है, सिवाय, दो-चार गानों के। विशेष कर 'बंजारा नामा' गीत के जिसका समावेश 1970 में किया गया था। इस गाने की धुन भटिंडा के स्वर्गीय हुकुम चन्द खलीली द्वारा तैयार की गई थी जो इस नाटक में फकीर का अभिनय भी किया करते थे।

'आगरा बाजार' का फलक दो शताब्दी पहले के आम भारतीय जीवन को समेटे है, जिनकी जुबान में शायरी कहने वाला नज़ीर अकबराबादी तब के कलमकारों और आलोचकों की बिरादरी में हाशिए पर था। लेकिन धर्म, सम्प्रदाय, जाति और जुबान से ऊपर इंसानियत को तवज्जो देने वाला नज़ीर हर आम आदमी की रूह में अपनी पैठ रखता था। हबीब तनवीर ने नज़ीर की भूली-बिसरी इन्हीं कविताओं को खंगाला और उन्हें तरतीब से जोड़कर आगरे के बाजार की कल्पना की। पहले नज्में हावी थीं, लेकिन मुसलसल आलेख

अट्ठावन साल पहले दिल्ली में हुआ था पहला मंचन

'आगरा बाज़ार' हबीब तनवीर की जिंदगी में प्रतिष्ठा और प्रशंसा की नई चमक लेकर आया। इस नाटक का ख्याल हबीबजी को जामिया यात्रा के दौरान आज से अट्ठावन साल पहले 1954 में आया था। नज़ीर अकबरावादी की खबर न तो उन्हें आलोचकों ने दी न बहुत सी किताबों में उन्होंने इस आम फहम शायर के कलाम पढ़ रखे थे, लेकिन जामिया निवासी अपने मित्र परवेज़ की मदद से उन्होंने नज़ीर अकबरावादी की कुछ कविताएँ पढ़ीं तो लगा इसमें असल भारत की तस्वीर झिलमिलाती है। हबीबजी ने भारी मशक्कत करते हुए नज़ीर की नज़्में खोजीं और उन्हें सिलसिलेवार एक रूपक की शक्ल में पिरोया। पूरी तरह नाटक न होकर भी इसमें जीवन का पूरा रस था। आगरा बाज़ार का पहला मंचन 19 और 20 अप्रैल 1954 को दिल्ली के रामलीला ग्राउंड पर खादी प्रदर्शनी के सभागार में हुआ था। तब 1, 3 और 5 रुपए के टिकट से दर्शकों ने इसे देखा था। पंद्रह नज्मों और पचास पात्रों के साथ फैले इस नाटक का संगीत निर्देशन संगीतकार सतीश भाटिया ने किया था। जबकि विख्यात सितार वादक पं. रविशंकर ने इसकी धुनों को संवारा था। इस नाटक की अपार सफलता ने हबीब तनवीर की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिए।

और प्रस्तुति में तब्दीलियाँ होती गई। मंचन निखरता गया। आगरे के प्रति दिली मोहब्बत, अवाम का आपसी सौहार्द, एकता और इंसानियत का पैगाम इस नाटक का मूल है। खुद मियाँ नज़ीर ने बयान किया है- 'अदना गरीब मुफलिस जरदार पैरते हैं, इस आगरे में क्या-क्या ऐ यार पैरते हैं।' हबीबजी ने नजीर की शायरी के जखीरे से करीब डेढ़ दर्जन कविताओं को चुना और उन्हें मुकम्मल धुनों में पिरोकर पेश किया। शायरी और मौसिकी का यह मेलजोल पूरे नाटक को संवादी बना देता है। कथा के सूत्र हबीबजी ने बड़ी ही सुरुचि से पिरोए और दृश्य तथा मंच की बुनावट में इतनी जीवंतता गोया हम आगरे के बाजार में खड़े हैं। सकारात्मक पहलुओं के बावजूद उन लोगों को थोड़ी निराशा थी जिन्होंने इस नाटक के एक दशक पहले के प्रदर्शन देख रखे हैं। नाटक के किरदारों में प्राण फूँकने वाले अस्सी प्रतीशत से ज्यादा कलाकार अब प्रस्तुति से अनुपस्थित रहने लगे और कई बार हबीबजी को औसत प्रतिभा के कलाकारों से ही काम चलाना पड़ा। कुछ 'नया थियेटर' छोड़ गए कुछ दुनिया से विदा हो गए और कुछ की उम्र शरीर और मन पर हावी हो गई। नए अभिनेताओं में उत्साह जरूर रहा पर पात्र को अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से जीने की चेतना का उनमें अभाव साफ दिखाई देता। लिहाजा आगरा बाजार की आभा कुछ फीकी हो चली। अलबत्ता पिच्चासी के आसपास पहुँच चुके हबीबजी, गोविंद निर्मलकर, रविलाल सांगड़े, उदयराम, नगीन, रामदयाल शर्मा, पुरुषोत्तम भट्ट, रामशंकर ऋषि, अमरदास मानिकपुरी मंच और मंच परे की सक्रियता देखकर सुखद विस्मय होता।

जिन्होंने इस नाटक के एक दशक पहले के प्रदर्शन देख रखे हैं। नाटक के किरदारों में प्राण फूँकने वाले अस्सी प्रतीशत से ज्यादा कलाकार अब प्रस्तुति से अनुपस्थित रहने लगे और कई बार हबीबजी को औसत प्रतिभा के कलाकारों से ही काम चलाना पड़ा। कुछ 'नया थियेटर' छोड़ गए कुछ दुनिया से विदा हो गए और कुछ की उम्र शरीर और मन पर हावी हो गई।

www.aisectonline.com

AISECT™
Education. Empowerment. Enterprise.

N • S • D • C
National
Skill Development
Corporation

PARTNERSHIP PROGRAM

Admission Notice प्रवेश सूचना : 2012-2013 Session

Any time admissions in Short Term Certificate (upto 5 Months) Courses!

आईसेक्ट केन्द्र पर आयें, और असली हुनर पायें

आज ही आयें और आईसेक्ट से जुड़े, जहाँ आपको हुनर के साथ ही मिलेगा यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय का प्रमाणीकरण भी, आपके बेहतर भविष्य के लिए।

आज ही प्रवेश लें आईसेक्ट के निम्नांकित एवं 100 से भी अधिक रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों में!

उपलब्ध पाठ्यक्रम - Available Courses

DIPLOMA PROGRAMS
PGDCA
DCA
DCPA
DCTT (Teachers Training)
ADCHN (Hardware & Networking)
and many more...

CERTIFICATE PROGRAMS
+ Data Entry Operation
+ Desk Top Publishing (DTP)
+ Financial Accounting & Tally
+ Office Automation
+ Word Processing
+ Web Technology
+ Networking Technology
+ Computer Applications
+ Laptop and PC Repair
... and many more

ALL ABOVE COURSES WILL BE CERTIFIED BY A UGC APPROVED UNIVERSITY

Last Date for Application for AISECT-NSDC Programmes : 31 August, 2012

आईसेक्ट एनएसडीसी पाठ्यक्रमों में प्रवेश क्यों लें?
- रोजगार मंत्रा Placement Portal पर फ्री रजिस्ट्रेशन एवं रोजगार पाने के अवसर
- सभी पाठ्यक्रम क्रेडिट शिक्षा पद्धति पर आधारित.
- आईसेक्ट की शिक्षा गुणवत्ता
- सफल कैरियर के लिए रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रम.
- UGC द्वारा प्रमाणित विश्वविद्यालय के डिप्लोमा व सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम

ROJGARMANTRA.COM
Placement Portal by AISECT

NSDC के बारे में

NSDC भारत सरकार एवं उद्योग जगत की पार्टनरशिप के अंतर्गत स्थापित उपक्रम है, जो देश भर में कौशल विकास प्रशिक्षण की परियोजनाओं को संचालित कर रहा है। आईसेक्ट-एनएसडीसी पार्टनरशिप के अंतर्गत कम्प्यूटर, आई टी, हार्डवेयर, नेटवर्किंग जैसे क्षेत्रों में कौशल विकास प्रशिक्षण, सभी आईसेक्ट केन्द्रों के माध्यम से चलाया जा रहा है।

AISECT IS THE SPONSORING ORGANISATION OF

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Established in 2006

AISECT UNIVERSITY
Established in 2010

Awards won by AISECT

For setting up AISECT-NSDC Learning Centres and more information contact : AISECT Head Office : SCOPE Campus, NH-12, Near Misrod, Hoshangabad Road, Bhopal-47 Mob. Rajesh-9826352299, Shailendra-9926670801, E-mail: aisect@aisect.org

उपलब्ध पाठ्यक्रमों की जानकारी एवं प्रवेश के लिए आज ही अपने नजदीकी आईसेक्ट-एनएसडीसी केन्द्र पर संपर्क करें